Butterflies

Protecting and empowering children since 1989

Right to Play

गुल्ली - डंडा

खेलों की कहानियां

संपादन– ऋतु मिश्रा, कॉर्डिनेटर, राइट टू प्ले कैंपेन, बटरफ्लाइज़
तकनीकी सहयोग– सुजॉय ज़ोज़फ
कवर डिजाइन और लेआउट– माधवन, मैड अबाउट डिजाइन
चित्र– मयूर त्रिपाठी, मैड अबाउट डिजाइन
कुछ चित्र दिल्ली बाल अधिकार क्लब के बच्चों ने राइट टू प्ले पर आयोजित एक कार्यशाला के दौरान बनाए।

हमारी तरफ से....

बचपन में घरों–गलियों, नदी–पोखरों के किनारे या खेल के अनगढ़ मैदानों में कूदते–फादंते, सखा–मित्रों से लड़ते–झगड़ते, चोट खाकर गिरते और गिरकर उठते, अपनी चोट सहलाते, आसुंओं से सराबोर चेहरे को कमीज की आस्तीन या फ्रॉक के किनारे से पोंछ कर फिर खेल में रम जाते हुए खेल हमारे अंतर्मन में कहीं भीतर तक उतर जाता है और फिर जीवन भर एक मीठे अनुभव की तरह बार–बार याद आता रहता है। जब भी समय मिलता है तो अपने बच्चों या उनके भी बच्चों के साथ बच्चा बन कर हम अपने इस अनुभव को फिर–फिर जीने का मौका ढूंढ ही लेते हैं।

खेल सिर्फ मनोरंजन या शारीरिक गतिविधि नहीं है। बच्चे के जन्मते ही उसके जीवन से जुड़ जाने वाला खेल उसे भावी जीवन जीने के लिए समझ और व्यवहार देता है। न सिर्फ अपने व्यक्तिगत जीवन बल्कि समाज, सामाजिक संबंधों और मानवीय चरित्र को समझने की नजर देता है। खेल की इसी अहमियत के बारे में खेल में ही जीने और खेल में ही प्राण छोड़ देने वाले वरिष्ठ लेखक और साहित्यकार प्रभाष जोशी अपनी किताब 'खेल सिर्फ खेल नहीं है' में लिखते हैं, ''खेल के जरिए आप खेलने वाले के चरित्र, उसके लोगों की ताकत और कमजोरियां समझ सकते हैं। अपन तो दरअसल खेल को खेल मानकर कभी देखते ही नहीं। सारे खेल अपने को खेलने वालों और उनके देश को समझने में मदद करते हैं।''

बच्चों के लिए खेलने का अधिकार से जुड़ा अभियान चलाते हुए हमने सोचा कि क्यों न हिंदी साहित्य को थोड़ा खंगाला जाए और देखा जाए कि खेलों पर कलमकारों ने कुछ लिखा है या नहीं। और सच मानिये कि हिंदी साहित्य के प्रणेता कहे जाने वाले प्रेमचंद से लेकर समकालीन लेखक–साहित्यकार लगभग सभी ने खेल को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है और खेल को विषय बनाकर जीवन के तमाम पहलुओं पर लिखा है। बाल साहित्य के रचेताओं ने तो इस विषय पर भरपूर लिखा ही है और जो कि स्वाभाविक है पर अन्य साहित्यकारों ने भी इस पर यदा–कदा जरूर लिखा है। समय और संसाधनों की कमी के चलते सिर्फ हिंदी साहित्य (और उसमें भी सिर्फ

कहानियां) को ही थोड़ा बहुत देख पाएं है पर यह भरोसा है कि दुनिया की लगभग सभी भाषाओं में खेल पर कुछ न कुछ कहानियां, कविताएं रची गई हैं। आने वाले समय में यह कार्यभार लिया है कि अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य के समुंदर में डुबकी लगाकर ऐसा ही एक संकलन बनाने की कोशिश करेंगे।

इस किताब में खेलों से जुड़ी कहानियों को ही संकलित किया गया है। सभी कहानियां पहले कहीं–न–कहीं छप चुकी हैं और शायद हममें से बहुत से लोगों ने इन्हें पढ़ा भी होगा पर फिर भी इन्हें एक साथ एक जगह पढ़ना एक अलग अनुभव होगा, ऐसा हमारा मानना है।

कोशिश यही रही है कि कहानियों में विविधता हो इसीलिए कोई पैमाना नहीं बनाया। जो कहानी खेल पर मिलती गई, पठनीय लगी शामिल कर ली। यही वजह है कि जहां इस किताब में एक ओर प्रेमचंद की कहानी 'गुल्ली डंडा' है जो तत्कालीन भारतीय समाज में वर्ग और जाति के मर्म को छूती है तो वहीं दूसरी ओर क्षमा शर्मा की 'नाचने लगीं गोटियां' भी है जो कि कैरम की गोटियों के बहाने मानवीय जीवन में अंहकार के दुष्परिणाम को बयान करती है। इन कहानियों में खेल तो है ही पर उसके साथ जीवन से जुड़ी कोई न कोई बात भी है। हर कहानी पढ़ते हुए, उसे इस संकलन में शामिल करते हुए लगा कि अक्सर खेल का मैदान हमें एक ऐसी जगह लगती है जहां कुछ खिलाड़ी हैं तो कुछ दर्शक। यह निर्जीव सी जगह कुछ ही समय के लिए गुलजार होती है। उसके बाद इसका कोई महत्व नहीं। खेल खतम पैसा हजम। लेकिन इन कहानियों को पढ़ने पर लगता है कि नहीं खेल ऐसे भी खतम नहीं होता....वह अनवरत चलता रहता है....और हमें सिखाता रहता है बहुत कुछ।

इस उम्मीद के साथ कि बच्चों के साथ–साथ ये कहानियां बड़ों को भी खूब पसंद आएंगी।

रीटा पानिकर
निदेशक
बटरफ्लाइज

अनुक्रम

1.	गुल्ली डंडा	प्रेमचंद	7
2.	खेल	जैनेंद्र	17
3.	बच्चा और गेंद	विष्णु नागर	24
4.	नाचने लगीं गोटियां	क्षमा शर्मा	27
5.	मेरी फुटबॉल	क्षमा शर्मा	29
6.	लाल रिबन वाली नन्हीं परी	प्रकाश मनु	33
7.	मैं जीत गया पापा	प्रकाश मनु	38
8.	कुश्ती	योगेंद्र आहूजा	49
9.	म्यूजिकल चेयर	पद्मा राय	64
10.	बिसात	राकेश बिहारी	79
11.	गुड़िया का ब्याह	इला प्रसाद	93
12.	फास्ट बॉलर	गीत चतुर्वेदी	100

गुल्ली–डंडा

प्रेमचंद

हमारे अंग्रेजीदां दोस्त मानें, या न मानें मैं तो यही कहूंगा कि गुल्ली–डंडा सब खेलों का राजा है। जब भी कभी लड़कों को गुल्ली–डंडा खेलते देखता हूं तो जी लोट–पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूं, न लॉन की जरूरत न कोर्ट की, न नेट की न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गये, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महंगे होते हैं। जब तक कम–से–कम सैंकड़ा न खर्च कीजिये, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यहां गुल्ली–डंडा है कि बिना हर्र–फिटकरी के चोखा रंग देता है, पर हम अंग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरूचि हो गयी है। हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन–चार रूपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खिलायें, जो बिना दाम–कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेजी खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो। ठीक है, गुल्ली से आंख फूट जाने का भय रहता है तो क्या क्रिकेट से सिर टूट जाने, तिल्ली फट जाने, टांग टूट जाने का भय नहीं रहता? अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे हैं जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह अपनी–अपनी रूचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियां काटना और गुंल्ली–डंडे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघट, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई–झगड़े, वह सरल स्वभाव, जिसमें छूत–अछूत, अमीर–गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोंचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाईश न थी, यह उसी वक्त भूलेगा जब–जब घरवाले बिगड़ रहे हैं, पिताजी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं, अम्मां की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचाराधारा में मेरा अन्धकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूं कि पदाने में मस्त हूं, न नहाने की सुधि है न खाने की। गुल्ली है तो जरा–सी पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो–तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लंबा, बन्दरों की सी लम्बी–लम्बी, पतली–पतली उंगलियां, बन्दरों की–सी ही चपलता, वह झल्लाहट। गुल्ली कैसी भी हो, उस पर इस तरह से लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके मां–बाप थे या नहीं, कहां रहता था, क्या खाता था, पर था हमारे गुल्ली–क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाये, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर से आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयां बना लेते थे।

एक दिन हम और गया दो ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था, मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है, मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र–निहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दांव लिए बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय–विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला–मेरा दांव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो?

'तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूं?'

'हां ! तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊं न पीने जाऊं?'

'हां ! मेरा दांव दिये बिना कहीं नहीं जा सकते।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूं?'

'हां, मेरे गुलाम हो।'

'घर जाता हूं, देखूं मेरा क्या कर लेते हो।'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है, दांव दिया है, दांव लेंगे।'

'अच्छा कल मैंने अमरूद खिलाया था वह लौटा दो।'

'वह तो पेट में चला गया।'

'निकालो पेट से, तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद?'

'अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया। मैं तुमसे मांगने न गया था।'

'जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दांव न दूंगा।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। जब गया ने अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दांव लेने का क्या अधिकार है! रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। वह मेरा अमरूद यों ही हम कर जायेगा? अमरूद पैसे के पांच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा–'मेरा दांव देकर जाओ, अमरूद–समरूद मैं नहीं जानता।'

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चा. हता था। वह मुझे जाने न देता था मैंने गाली दी, उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली ही नहीं दो–एक चांटा जमा दिया। मैंने उसे दांत काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरन्त आंसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हंसता हुआ घर जा पहुंचा। मैं थानेदार का लड़का, एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, वह मुझे

उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

उन्हीं दिनों पिताजी का वहां से तबादला हो गया। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछड़ जाने का बिलकुल दुख न हुआ। पिताजी दुखी थे। यह आमदनी की जगह थी। अम्माजी भी दुखी थीं, यहां सब चीजें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव–सा हो गया था, लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था, वहां ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे–ऐसे ऊंचे घर हैं कि आसमान से बात करते हैं। वहां के अंग्रेज़ी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों की पीटे तो उसे जेल हो जाये। मेरे मित्रों की फैली हुई आंखें और चकित–मुद्रा बतला रही थीं कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊंचा उठ गया हूं। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे–तुम भागवान हो भाई, जाओ, हमें तो इसी ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गये। मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुंचा और डाकबंगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल–स्मृतियां हदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आंखें किसी प्यासे पथिक की भांति बचपन के उन क्रीड़ा–स्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थीं, पर उस परिचित नाम के सिवा वहां और कुछ परिचित न था। जहां खंडहर था, वहां पक्के मकान खड़े थे। जहां बरगद का पुराना पेड़ था, वहां अब एक सुन्दर बगीचा था। स्थान की काया पलट हो गयी थी। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता, तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियां बांहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं, मगर वह दुनिया बदल गयी थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊं और कहूं–तुम मुझे भूल गयीं! मैं तो अब भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूं। सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो–तीन लड़कों को गुल्ली–डंडा खेलते देखा। एक झण के लिए मैं अपने को बिल्कुल भूल गया कि मैं एक ऊंचा अफसर हूं, साहबी ठाठ में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा–'क्यों बेटे, यहां कोई गया नाम का आदमी रहता है ?'

एक लड़के ने गुल्ली–डंडा समेटकर सहमे हुए स्वर में कहा –'कौन गया? गया चमार?'

मैंनें यों ही कहा–'हां–हां वही।' 'गया नाम का कोई आदमी है तो, शायद वही हो।' 'हां, वही तो।'

'ज़रा उसे बुला ला सकते हो?'

लड़का दौड़ा गया और एक झण में एक पांच हाथ के काले देव को साथ लिए आता दिखाई दिया। मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊं, पर कुछ सोचकर रह गया।

बोला–'कहो गया, मुझे पहचानते हो?'

गया ने झुककर सलाम किया–'हां मालिक, भला पहचानूंगा क्यों नहीं? आप मजे में रहे?'

'बहुत मजे में। तुम अपनी कहो?'

'डिप्टी साहब का साईस हूं।'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन दोनों डाकिये हो गये हैं। आप?'

'मैं तो जिले का इंजीनियर हूं।'

'सरकार तो पहले ही बड़े ज़हीन थे।'

'अब कभी गुल्ली–डंडा खेलते हो?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आंखों से देखा–'अब गुल्ली–डंडा क्यों खेलूंगा सरकार!

अब तो पेट के धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।'

'आओ, आज हम–तुम खेलें। तुम पदाना, हम पदेंगे। तुम्हारा एक दांव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया बड़ी मुकिल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़। बेचारा झेंप रहा था, लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी, इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी–खासी भीड़ लग जायेगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहां रहेगा, पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से दूर जाकर एकान्त में खेलेंगे। वहां और कोई देखने वाला न बैठा होगा। मजे से खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस लेकर खायेंगे। मैं गया को लेकर डाकबंगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किये हुए था, लेकिन गया इसे अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था, वही सोचने में मगन था।

मैंने पूछा–'तुम्हें हमारी कभी याद आती थी गया? सच कहना।' गया झेंपता हुआ बोला–'मैं आपको क्या याद करता हजूर, किस लायक हूं। भाग में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।'

मैंने कुछ उदास होकर कहा–'लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा डंडा, जो तुमने तानकर जमाया था, याद है न?'

गया ने पछताते हुए कहा–'वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।'
'वाह! वह मेरे बाल–जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर–सम्मान में पाता हूं, न धन में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।''

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आये हैं। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है जहां आकर हम किसी समय कमल पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झुमके बनाकर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड़ पर चढ़ गया और टहनी काट लाया। चट–पट गुल्ली–डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गयी। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप–ही–आप जाकर बैठ जाती थी। वह दाहिने–बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में ही पहुंचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली, सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में कोई चुम्बक हो जो गुल्लियों को खींच लेता हो, लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह–तरह की धांधलियां कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। पहुंच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हालांकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती और वह ज़रा दूर पर गिर पड़ती, तो मैं झटपट उसे खुद उठा लेता और दोबारा टांड़ लगाता। गया वह सारी बे–कायदियां देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे वह सब कायदे–कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था। गुल्ली उसके हाथ से निकल कर टन से डंडे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डंडे से टकरा जाना, लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं। कभी दाहिने जाती है, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे।

आधे घंटे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डंडे में आ लगी। मैंने धांधली की, गुल्ली डंडे में नहीं लगी, बिलकुल पास से गयी, लेकिन लगी नहीं।
गया ने किसी प्रकार का असन्तोष न प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डंडे में लगती तो क्या मैं बईमानी करता?'

'नहीं भैया, तुम भला बेईमानी–करोगे!'

बचपन में मजाल थी कि मैं ऐसा घपला करके जीता बचता। यही गया गर्दन पर चढ़ बैठता, लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है! सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डंडे में लगी और इतने जोर–से लगी जैसे बन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने जब किसी तरह की धांधली करने का साहस मुझे उस वक्त भी न हो सका, लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूं? मेरा हरज ही क्या है। मान गया, तो वाह–वाह, नहीं तो दो–चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अंधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूंगा। फिर कौन दांव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा–'लग गयी, लगी! टन से बोली।'

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा–'तुमने लगते देखा? मैनें तो नहीं देखा।'
'टन–से बोली है सरकार!'

'और जो किसी ईंट में लग गयी हो?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला, इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसे ही था, जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डंडे में ज़ोर–से लगते देखा था, लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हां किसी ईंट में लगी होगी। डंडे में लगती तो इतनी आवाज न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया, लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धांधली कर लेने के बाद, गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दांव देना तय कर दिया।

गया ने कहा–'अब तो अंधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।'

मैंने सोचा, कल बहुत–सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदावे, इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दांव ले लो।'

'गुल्ली सूझेगी नहीं।'

'कुछ परवाह नहीं।'

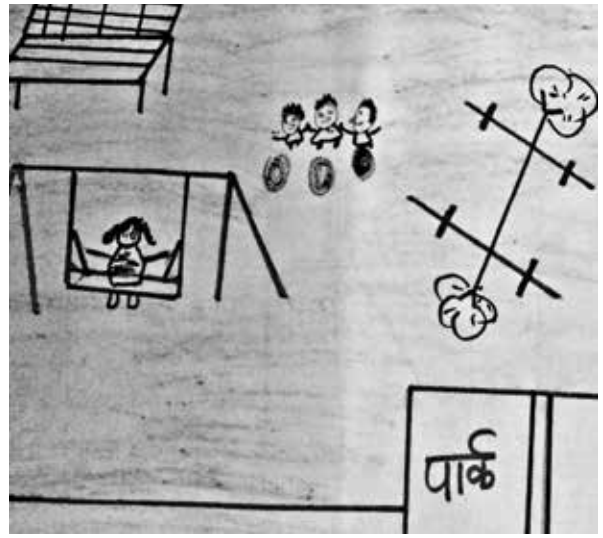

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टांड लगाने का इरादा किया, पर दोनो ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह दांव पूरा कर चुका? बेचारा घंटा भर पदा, पर एक मिनट ही में अपना दांव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

'एक दांव और खेल लो। तुम पहले ही हाथ में हुच गये।'

'नहीं भैया, अब अंधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। क्या कभी खेलते नहीं?'

'खेलने का समय कहां मिलता है भैया?'

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते–जलते पड़ाव पर पहुंच गये।

चलते–चलते बोला–'कल यहां गुल्ली–डंडा होगा। सभी पुरानी खिलाड़ी खेलेंगे।

आप भी आओगे? जब आपको फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊं।'

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस–दस आदमियों की मंडली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले, अधिकांश युवक थे जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा–बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित हो गया। टांड लगाता तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की–सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डंडे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती।

पदने वालों में एक युवक ने धांधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली रोक ली थी। गया का कहना था–गुल्ली ज़मीन में लगकर उछली थी। पर दोनों में ताल ठोंकने की नौबत आयी। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो जरूर मार–पीट हो जाती। मैं खेल में न था, पर दूसरों के इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब कुछ भूल. कर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धांधली की, बेईमानियां कीं, पर उसे ज़रा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खिला रहा था, वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं असफर हूं। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। मैं अब उसका लिहाज पा सकता हूं, अदब पा सकता हूं, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूं। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूं।

.....

खेल

जैनेंद्र

मौन–मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हंस रही थी। उस समय गंगा के निर्जन बालुकास्थल पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के बालू और पानी को अपना एक मात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्मा–खण्डों को निस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तटके जल को छंटा–छट उछाल रहा था। पानी मानो चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप–थोपकर एक भाड़ बना रही थी।

बनाते–बनाते भाड़ से बालिका बोली, ''देख, ठीक नहीं बना, मैं तुझे फोड़ दूंगी।'' फिर बड़े प्यार से थपका–थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी–इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊंगी–वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर ?.....नहीं, वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा–खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जायगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूंगी।

मनोहर उधर अपने पानी से हिल–मिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहां अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी–मनोहर कैसा अच्छा है, पर वह दंगई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है। अबके दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा, तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेंगे। बालिका सुरबाला सातवें वर्ष में थी। मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया–भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे? मैं तो रह जाऊंगी। पर मनोहर तो जलेगा। फिर सोचा–उससे मैं कह दूंगी

भई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नहीं माना? मेरे पास वह बैठने को आया ही–तो? मैं कहूंगी–भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूं। .....पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या? ....जरूर करेगा, वह बड़ा हठी है। ...पर मैं उसे आने नहीं दूंगी। बेचारा तपेगा–भला कुछ ठीक है! ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूंगी, और कहूंगी–अरे, जल जायेगा मूर्ख! यह सोचने पर उसे बड़ा मजा सा आया, पर उसका मुंह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भांति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो–एक पक्के हाथ भाड़ पर लगा कर देखा–भाड़ अब बिलकुल बन गया है। मां जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लेटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पैर धीरे–धीरे भाड़ के नीचे से खींच लिया। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती सी जाती थी। उसके पैर ही पर तो भाड़ टिका है, पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े! पैर साफ निकालने पर भाड़ जब ज्यों का–त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी।

बालिका एकबारगी ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई। मूर्ख लड़का पानी से उलझ रहा है, यहां कैसी जबरदस्त कारगुजारी हुई है– सो नहीं देखता! ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है!

पर सोचा– अभी नहीं; पहले कुटी तो बना लूं। यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े धीरे से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे–धीरे छोड़कर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पड़ोस का भाड़ जब बालिका ने पूरा–पूरा याद किया, तो पता चला एक कमी रह गई। धुआं कहां से निकलेगा? तनिक सोचकर उसने एक सींक टेढ़ी करके उसमें गाड़ दी। बस, ब्रह्माण्ड का सबसे सम्पूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उस उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन कराएगी, पर अभी ज़रा थोड़ा देख तो और ले। सुरबाला मुंह बाये आंखें स्थित करके इस भाड़–श्रेष्ठ को देख–देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहां विराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताये इस भाड़ के जादू में।

मनोहर अपनी 'सुरी–सुरो–सुर्री' की याद कर पानी से नाता तोड़, हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गंगा की धार में फेंककर, जब मुड़ा, तब श्रीसुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्मलीला के जादू को बूझने और सुलझाने में लगी हुई थीं।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा–श्रीमती जी बिलकुल अपने भाड़ में अटकी हुई हैं। उसने जोर से कहकहा लगाकर एक लात में भाड़ का काम तमाम कर दिया।

न जाने क्या क़िला फ़तह किया हो, ऐसे गर्व से भरकर निर्दयी मनोहर चिल्लाया–''सुर्रो रानी!''

सुर्रो रानी मूक खड़ी थी! उनके मुंह पर जहां अभी एक विशुद्ध रस था, वहां अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उन्हीं के हाथ का बनाया, हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक–एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थीं। हा, हन्त! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़–फोड़ डाला!

हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई होता, तो उन मूर्खों को समझाता–'यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुख क्या और सुख क्या। जो जिससे बनाया है वह उसी में लीन हो जाता है–इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है? यह संसार जल का बुदबुदा है, फूटकर किसी रोज जली में ही मिल जायगा। फूट जाने में ही बुदबुदे की सार्थकता है। जो यह नहीं समझते, वे दया के पात्र हैं। री, मूर्खा लड़की, तू समझ। सब ब्रह्माण्ड ब्रम्हा का है, और उसी में लीन हो जायगा। इससे तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर इससे शिक्षा ले। जिसने लात मारकर उसे तोड़ा है वह

तो परमात्मा का केवल साधन–मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है? परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और परमात्मा तक पहुंचने का प्रयास कर। आदि–आदि।'

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ धीमान् पण्डित हत्योपदेश के लिए उस गंगा–तट पर नहीं पहुंच सके। हमें तो यह भी सन्देह है कि सुर्री एकदम इतनी जड़–मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार–रत पंडित परमात्मा–निर्देश से वहां पहुंच कर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को न सुनती और समझती। पर, अब तो वहां निर्बुद्धि शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं है, और मनोहर विश्व–तत्त्व की एक भी बात नहीं जानता। उसका मन न जाने कैसा हो रहा है। कोई जैसे उसे भीतर–ही–भीतर मसोसे डाल रहा है। लेकिन उसने बनकर कहा, ''सरो, दुत् पगली रूठती है?''

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही ।

''सुरी, रूठती क्यों है?''

बाला तनिक न हिली।

''सुरी! सुरी!.....ओ, सुरो!''

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज हठात् कंपी–सी निकली।

सुरबाला अब और मुंह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कम्पन का सामना शायद उससे न हो सका।

''सुरी .....ओ सुरिया! मैं मनोहर हूं .....मनोहर!.....मुझे मारती नहीं!''

यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

''हम नहीं बोलते।'' बालिका से बिना बोले रहा न गया। उसका भाड़ शायद स्वग. ंविलीन हो गया। उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान, कांपती हुई मनोहर की आवाज ने ले लिया।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा, ''सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नही देती! उसे एक थप्पड़ लगा– वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।''

बाला ने कड़क कर कहा, ''चुप रहो जी!''

''चुप रहता हूं पर मुझे देखोगी भी नहीं?''

''नहीं देखते।''

''अच्छा मत देखो। मत ही देखो। मैं अब कभी सामने न आऊंगा, मैं इसी लायक हूं।''

''कह दिया तुमसे, तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।''

बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो ब्याज कोप का रूप घर रहा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला, ''लो सुरी, मैं नहीं बोलता। मैं बैठ जाता हूं। यहीं बैठा रहूंगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूंगा, न बोलूंगा।''

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली– 'हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी? हमारा भाड़ बनाके दो!''

''लो अभी लो।

''हम वैसा ही लेंगे।''

''वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।''

''उसपे हमारी कुटी थी, उसपे धुएं का रास्ता था।''

''लो, सब लो। तुम बताती न जाओ, मैं बनाता जाऊं।''

''हम नहीं बताएंगे। तुमने क्यों तोड़ा? तुमने तोड़ा, तुम्हीं बनाओ।''

''अच्छा, पर तुम इधर देखो तो।''

''हम नहीं देखते, पहले भाड़ बनाके दो।''

मनोहर ने एक भाड़ बना कर तैयार किया। कहा, ''लो, भाड़ बन गया।''

''बन गया?''

''हां।''

''धुएं का रास्ता बनाया? कुटी बनाई?''

''सो कैसे बनाऊं– बताओ तो।''

''पहले बनाओ, तब बताऊंगी।''

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक–एक पत्ते की ओट लगाकर कहा, ''बना दिया।''

तुरन्त मुड़कर सुरबाला ने कहा, ''अच्छा, दिखाओ।''

'सींक ठीक नहीं लगा जी', 'पत्ता ऐसे लगेगा' आदि आदि संशोधान कर चुकने पर मनोहर को हुक्म दिया पानी डालेंगे।''

मनोहर पानी लाया।

गंगाजल से कर–पत्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुर्रो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकना–चूर कर दिया!

सुरबाला रानी हंसी से नाच उठीं। मनोहर उत्फुलता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रान्त में वह निर्मल शिशु–हास्य कलरव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल–लाल मुंह से गुलाबी–गुलाबी हंसी हंस रहे थे। गंगा मानो जान–बूझकर किलकारियां मार रही थीं। और–और वे लम्बे ऊंचे–ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पण्डितों की भांति, सब हास्य की सार–शून्यता पर मानो मन–ही–मन गम्भीर तत्वालोचन कर, हंसी में भूले हुए मूर्खो पर थोड़ी दया बख्शना चाह रहे थे।

.....

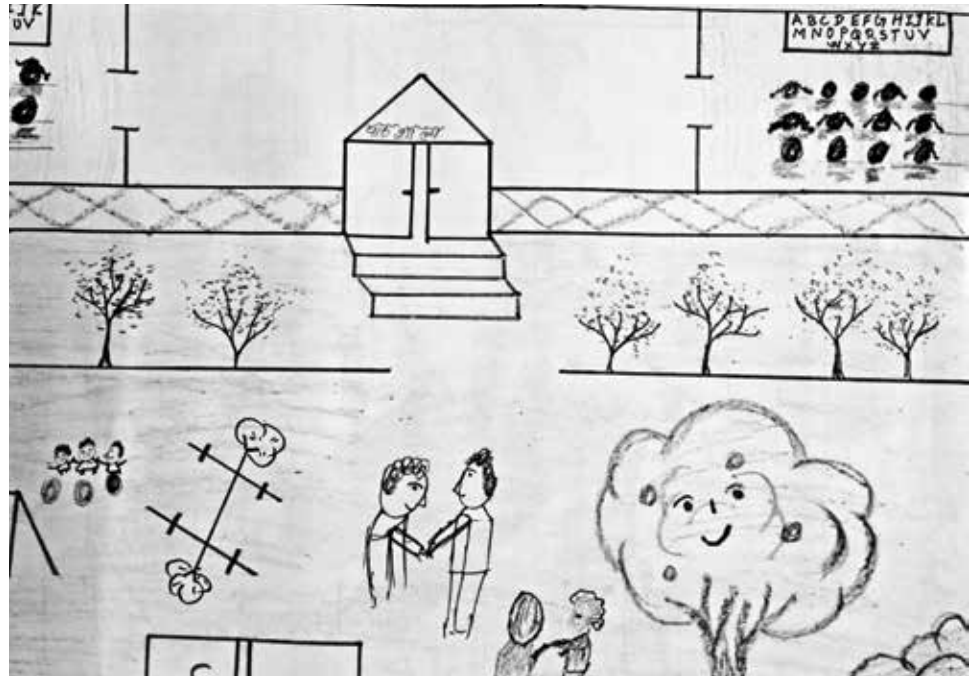

बच्चा और गेंद

विष्णु नागर

बच्चा गेंद खेलना चाहता था। मां को कोई एतराज नहीं था। और बाप घर में था नहीं।

ठंड के दिन थे। सुबह का वक्त था और गेंद कोने में चुपचाप पड़ी रहना चाहती थी। वह चाहती नहीं थी कि कोई उसे छेड़े। दस बजे तक तो वह बिल्कुल हिलना–डुलना नहीं चाहती थी। मगर उसका स्वामी था बच्चा। वह मानने वाला था भला ? क्या करती, हिलने–डुलने–दौड़ने लगी। गुस्ता जताने के लिए एक बार गड्ढे में भी जा गिरी। बच्चा रोने लगा तो मां ने गेंद निकाली। मगर गेंद का गुस्सा खत्म नहीं हुआ था। इस बार वह नाली में जा गिरी। फिर निकाला तो फिर सड़क पर दौड़ती चली गयी और राहगीर के पैर का धक्का खाकर आगे चली गयी ।

मां ने बच्चे को समझाया कि आज गेंद बड़ी शैतानी कर रही है। आओ, इसके साथ कमरे में खेलें। एक तरफ से मां गेंद लुढ़काएगी, दूसरी ओर से बच्चा । लेकिन यह सुस्त खेल बच्चे को ज्यादा देर तक पसन्द नहीं आया। हालांकि गेंद को इस तरह की छेड़–छाड़ फिर भी अच्छी लग रही थी। बल्कि अब उसकी सुस्ती उड़ गयी थी और उसका भी खेलने का मन हो रहा था । बच्चा गेंद की इच्छा से बेखबर था। गेंद अपनी खेलने की इच्छा जताने के लिए लुढ़ककर घर के बीचों बीच ऐसे आ गयी कि बच्चा कहीं से भी आये–जाये तो उसकी निगाह जरूर गेंद पर पड़े। बच्चा गेंद देखेगा तो जरूर उसके साथ छेड़खानी करेगा। गेंद ने तय कर लिया था कि बच्चा अगर गलती से भी उसे टल्ला देगा तो वह ऐसे लुढ़कती–लुढ़कती दूर जायेगी कि बच्चे को अपनी ताकत पर कौतुहल होगा। कौतुहल में वह फिर खेलने लगेगा।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अलबत्ता वह गेंद मां के पांवों के नीचे जरूर आयी। मां ने बच्चे से पूछा कि वह गेंद खेलेगा। बच्चे ने नहीं कहा। मां ने गेंद खिलौने के डिब्बे में रख दी।

गेंद ने डिब्बे में पहले से ही विराजमान शेर से कहा, खरगोश से कहा, भालू से कहा, हिरण से कहा, सेठ–सेठानी से कहा, बंदर से कहा कि आओ, खेलो मेरे साथ, पर सब सुस्ती के मारे राजी नहीं हुए। गेंद ने कचरा ढोने वाले ट्रक से कहा कि वह ही जरा–सी सैर करा दे। मगर ट्रक भी अकड़ गया।

दुखी गेंद ने जब देखा कि कोई उसके साथ खेलने को राजी नहीं है तो वह उठी और उसने मगन होकर पोहे खाते बच्चे के सिर पर टप्पा मारा।

बच्चे को गेंद की यह शैतानी बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। बच्चा भी उठा और उसने गेंद को सजा देने के लिए उसे निशाना साधकर दीवार पर मारा। हंसती–खिल. खिलाती गेंद दुगुने उत्साह से वापस आयी और उसकी पोहे की प्लेट में ही गिर पड़ी। उसने फौरन पोहे के कई दाने अपने पर चिपका लिये। और कई नीचे जमीन पर गिरा दिये।

बच्चा गेंद पर गुस्सा तो बहुत हुआ मगर उस समय सबसे ज्यादा चिन्ता उसे पोहे की थी ।

गेंद बच्चे को छेड़कर बहुत खुश हुई ।

शाम को जब बच्चें ने गेंद की शिकायत अपने पापा से की तो गेंद डर गयी। आंखें मिचमिचाकर सब सुनती रही और डरती रही कि कहीं उसे घर से निकाल न दिया जाये। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बच्चे को उसके पापा ने किसी और बात पर बहला दिया।

गेंद ने अपनी खैर मनायी पर इससे शिक्षा कुछ भी नहीं ली। अगले दिन उसने फिर बच्चे को खिलाया भी और चिढ़ाया भी। रूठी भी और नाची भी। सुस्ती भी दिखायी और चुस्ती भी। एक बार तो गेंद महारानी की तरह छत पर जा बैठी और बच्चे को अंगूठा दिखाया। एक बार कंटीली झाड़ी में जाकर बैठ गयी। एक बार पानी के पतीले में घुस गयी। एक बार बक्सों की आड़ में छुप गयी।

हर जगह से उसे निकाला गया और बच्चे के हाथ में दिया गया। एक बार बच्चे ने उसके ऊपर बैठने की कोशिश की। बच्चे ने जैसे ही अपना सारा जोर गेंद पर लगाया, गेंद ने शैतानी की और लपककर भाग गयी। लेकिन बच्चे ने हार नहीं मानी। वह फिर गेंद पर बैठा। गेंद ने फिर उसे गिरा दिया।

चार–छह बार में गेंद की हड्डियां–पसलियां इतनी दुखने लगीं कि वह तंग होकर एक नाली में भाग गयी । उसे क्या पता था कि नाली में तेज बहाव है। वह नाली से नाले में चली गयी। उसे ताजिन्दगी वहीं रहना पड़ा। उसने बच्चे को बहुत पुकारा–बहुत पुकारा।

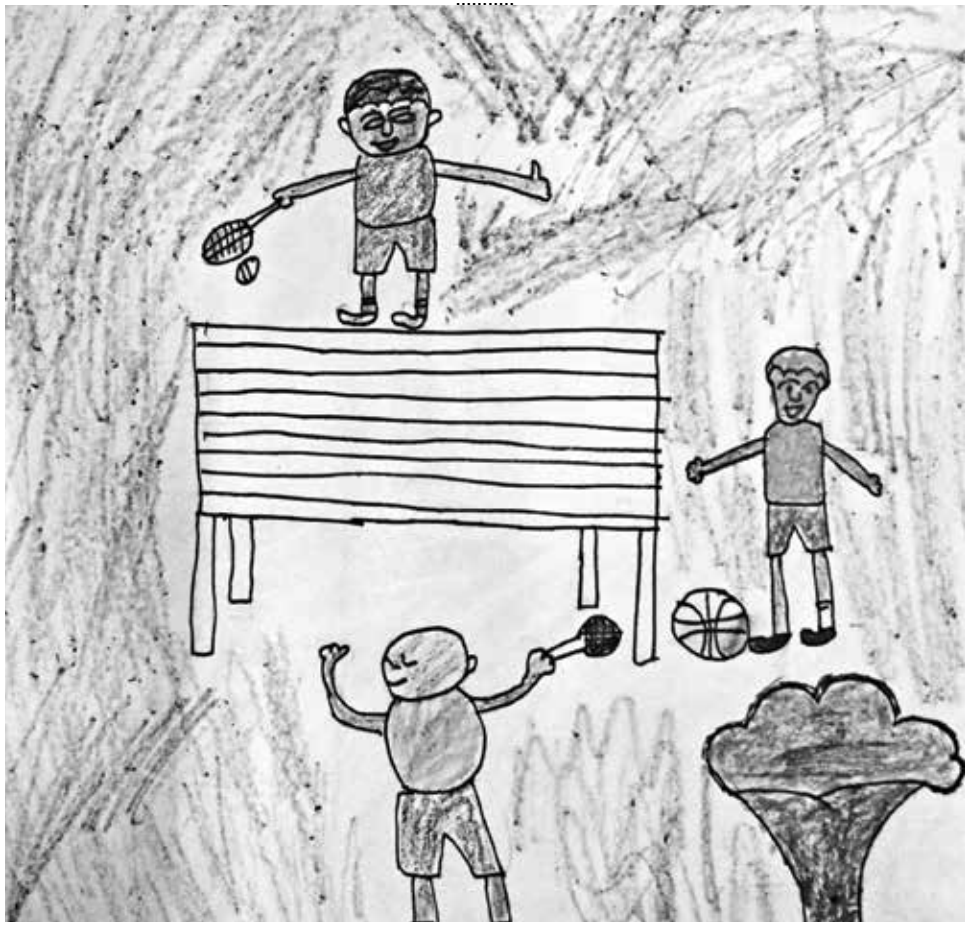

नाचने लगीं गोटियां

क्षमा शर्मा

आदित्य और अंशु के पास एक कैरम बोर्ड था। अक्सर शाम को बाहर खेलने जाने से पहले वे कैरम खेलते थे। एक बार कैरम की गोटियों में बहस चल रही थी। वे कह रही थीं कि अगर वे न हों तो कोई कैरम ही न खेल सके। रानी रंग की रानी गोटी इन सबकी बातें सुन इतराकर बोली– ''बड़ी चली हो महारानी बनने जानती नहीं कि तुम सब की रानी तो मैं ही हूं। मैं न होऊं तो तुम क्या करोगी।'' एक गोटी जो लड़ाकू मशहूर थी उसने कहा– ''तुम तो बस दिखाने भर की रानी हो । अपने बल पर तो अकेली बोर्ड से बाहर भी नहीं निकल सकतीं। हमेशा अपने पीछे हम में से कोई एक चाहिए।''

''अरे रहने दो। अपने आप ही पिछलग्गू बनी चली आती हो मेरे पीछे। न भी आओ तो मेरा क्या बिगड़ेगा। रहूंगी तो मैं रानी ही।'' रानी की अकड़ भरी बात सुनकर बाकी गाटियों को बहुत गुस्सा आया। सबने मन ही मन तय किया कि वे इस रानी को सबक सिखा कर रहेंगे। अब जैसे ही दो बच्चे कैरम खेलने बैठते गोटियां फटाफट बाहर निकलने लगतीं। मगर जैसे ही रानी बाहर निकलती बाकी गोटियां जैसे बोर्ड पर जम जातीं। चाहे जितना स्ट्राइकर मारो वे टस से मस न होतीं । जिससे बच्चे बार–बार रानी को बोर्ड पर पटकते। इससे उसे चोट भी लगती। वह दर्द से करा. हती। बाकी गोटियां उसकी इस दशा पर मुसकरातीं अरे रानी है। कर लेगी न सब अपने आप। इन सब गोटियों में एक गोटी ऐसी भी थी जिसे रानी को देख तकलीफ होती। एक दिन उसने अपनी सहेलियों से कहा–''हम सबने रानी को बहुत सजा दे ली। लेकिन अब इस लड़ाई को खत्म कर देना चाहिए। क्योंकि यह भी तो हो सकता है कि हमसे खेलने वाले बच्चे हमारी हरकतों से तंग आकर दूसरी गोटियां ले आएं और हमें कूड़ेदान में फेंक दिया जाए। तब हम सबका क्या होगा, तुमने सोचा है। यहां तो हम सब आराम से रहते हैं। गरमी, सरदी, बरसात सबसे बचे रहते हैं। बाहर की दुनिया कैसी होगी क्या पता। कूड़ेदान में से उठाकर किसी ने हमें आग में जला दिया तो तब हमारा क्या होगा। आखिर बनी तो हम लकड़ी से ही हैं।'' उस गोटी की बात सुनकर सारी गोटियां सोच में पड़ गईं।

सबने देखा कि रानी गोटी के आंसू बह रहे थे। वह कहने लगी–''वैसे तो मैं रानी हूं मगर मुझे यह बात क्यों समझ में नहीं आई। गलती मेरी ही थी, घमंड में आकर मैंने अपनी सभी सहेलियों का अपमान किया। सबको मुसीबत में डाल दिया। सॉरी फ्रेंड्स।'' रानी ने यह कहा तो सारी गोटियां खुशी से उछलने लगीं। वे कूद–कूदकर बोर्ड से बाहर जाने लगीं। बोर्ड के ऊपर नाचने लगीं। एक दूसरे को जोक्स सुनाने लगीं और हंस–हंसकर लोटपोट होने लगीं। उन्हें लगा कि इतनी हंसी तो जीवन में उन्होंने पहली बार सुनी है।

अगले दिन जब आदित्य और अंशु कैरम खेलने लगे तो गोटियों में होड़ लग गई। वे सबकी सब रानी से पहले ही बोर्ड से बाहर जाने की तैयारी करने लगीं। बच्चों को भी आज खेलना बहुत अच्छा लगा। एक गोटी बाहर निकलती तो वे जोर से तालियां बजाते। ऐसा लग रहा था जैसे सारी गोटियां भी ताली बजा रही थीं।

.....

मेरी फुटबॉल

क्षमा शर्मा

नंदू के पास एक फुटबॉल थी। दादाजी ने जब उसे यह दी थी तो कहा था– ''नंदू देख यह उतनी ही पुरानी है जितना कि मैं। पर अभी तक अच्छी खासी है। तू इससे खेल और मुझे अच्छा खिलाड़ी बनकर दिखा।'' नंदू ने खुशी–खुशी फुटबॉल ले ली और घर से भाग गया। वह देर तक उससे अकेला ही खेलता रहा। फुटबॉल कभी इधर जाती तो कभी उधर। नंदू उसके पीछे दौड़ता। दादाजी वरांडे में बैठे यह सब देख रहे थे और खुश हो रहे थे। शुरू में तो दादाजी भी उसके साथ खेलते थे। थोड़ी देर के लिए वह भी जैसे नंदू जितने बड़े हो जाते। खूब हंसते, जोर–जोर से तालियां बजाते। फुटबॉल के पीछे तेजी से भागते।

एक दिन पापा ने उन्हें खेलने से मना कर दिया। कहा कि अब इस उम्र में वह बस नंदू को खेलते देखें। उसके साथ खेलें नहीं। हाथ–पांव में चोट लग गई तो मुसीबत हो जाएगी। नंदू बहुत उदास हुआ। अब कैसे खेले ? पापा तो दफ्तर चले जाते। मम्मी को काम से फुरसत न मिलती। पापा ने मना किया था इसलिए दादा जी से कह नहीं सकता था।

नंदू की बहन थी बुलबुल। उसने नंदू को चुपचाप बैठे देखा तो पूछा–''आज यहां क्यों बैठे हो। खेलोगे नहीं ?''

''किसके साथ खेलूं ? दादाजी तो खेलेंगे नहीं।'' ''तो अपने किसी दोस्त को बुला लो।'' –बुलबुल ने कहा। ''क्या पता कोई आएगा भी कि नहीं।'' –नंदू बोला।

वह बोली–''तो कोई बात नहीं भइया, मैं खेलूंगी न आज से तुम्हारे साथ। कल से हम दोनों स्कूल से आकर, खाना खाकर, होमवर्क कर लिया करेंगे। फिर खूब खेला करेंगे।'' बुलबुल की बात सुनकर नंदू खुश होकर मुसकराने लगा। अब शाम होते ही नंदू बुलबुल के साथ खेलता। खेलते–खेलते थक जाते तो एक तरफ बैठ जाते। दादाजी सारी बात समझ कभी शरबत बना लाते। कभी कोई फल खाने को देते। और

कभी तो मम्मी मोटी मलाईदार लस्सी ले आतीं। इन दोनों को रोज खेलते देख पड़ोस का समीर भी आने लगा। तीन की टीम बनी जो जल्दी ही चार की हो गई। उनकी देखा–देखी सुहेल भी उनके साथ खेलने लगा। दादाजी बच्चों को खेलते देखते तो बहुत खुश होते। जो बच्चा अच्छा खेलता उसे वह इनाम में अपनी जेब से निकालकर कभी टॉफी तो कभी बिस्कुट देते। किसी दिन शाम को बच्चों को आइसक्रीम खिलाने भी ले जाते। मोहल्ले भर के लोग इस फुटबॉल टीम को पहचानने लगे थे। धीरे–धीरे वहां इतने बच्चे आने लगे कि दो टीमें बनानी पड़ीं। अब हर टीम में जीतने की होड़ लगी रहती। खूब शोर–शराबा होता। फुटबॉल कभी किसी के आंगन में चली जाती तो कभी किसी के शीशे से टकराती। आसपास के लोग इससे और बच्चों के शोर–शराबे से परेशान होने लगे। वे दादाजी के पास शिकायतें लेकर आने लगे। बच्चों को डांटने लगे। दादाजी उन्हें समझाने की कोशिश करते। बच्चों की उम्र का हवाला देते, मगर कोई न समझता। एक बार पास में रहने वाले वर्माजी के बाहर के आंगन में फुटबॉल क्या गिरी कि तूफान आ गया। उन्होंने बच्चों को खूब डांटा। पुलिस बुलाने की धमकी दी और फुटबॉल उठाकर रख ली। फिर चिल्लाकर कहा कि अब कि वह उसे कभी वापस नहीं करेंगे। न फुटबॉल रहेगी, न बच्चे खेलेंगे, न किसी को परेशानी होगी।

बच्चों ने उनसे बहुत प्रार्थना की, वादा भी किया कि अब वे शोर नहीं करेंगे, फुटबॉल भी उनके आंगन में कभी आकर नहीं गिरेगी। मगर वर्माजी को नहीं मानना था, वह नहीं माने। बल्कि बच्चों को बाहर निकालकर उन्होंने अपना गेट बंद कर लिया और घर के अंदर चले गए। बच्चों ने दादाजी से आकर शिकायत की। मगर वह भी क्या करते। वह तो पहले ही पड़ोसियों की शिकायतों से परेशान थे। क्या करें, क्या न करें ? बच्चों ने सोचा कि क्यों न आपस में चंदा करके एक नई फुटबॉल ले आएं। उन्होंने दादाजी से कहा। दादाजी को लगा कि बच्चे दोबारा खेलेंगे। फिर से शोर होगा। लोगों के घरों में कुछ टूट गया तो लड़ाई भी हो सकती है। हालांकि बच्चों के न खेल पाने से वह भी दुखी थे। फिर उस फुटबॉल को उन्होंने अभी तक इतने जतन से संभालकर रखा था। उसे इस तरह कोई रख लेगा, यह उन्होंने कभी सोचा तक नहीं था।

कई दिन से बच्चे खेल नहीं पा रहे थे। उनके चेहरे लटके हुए थे। उनकी उदासी

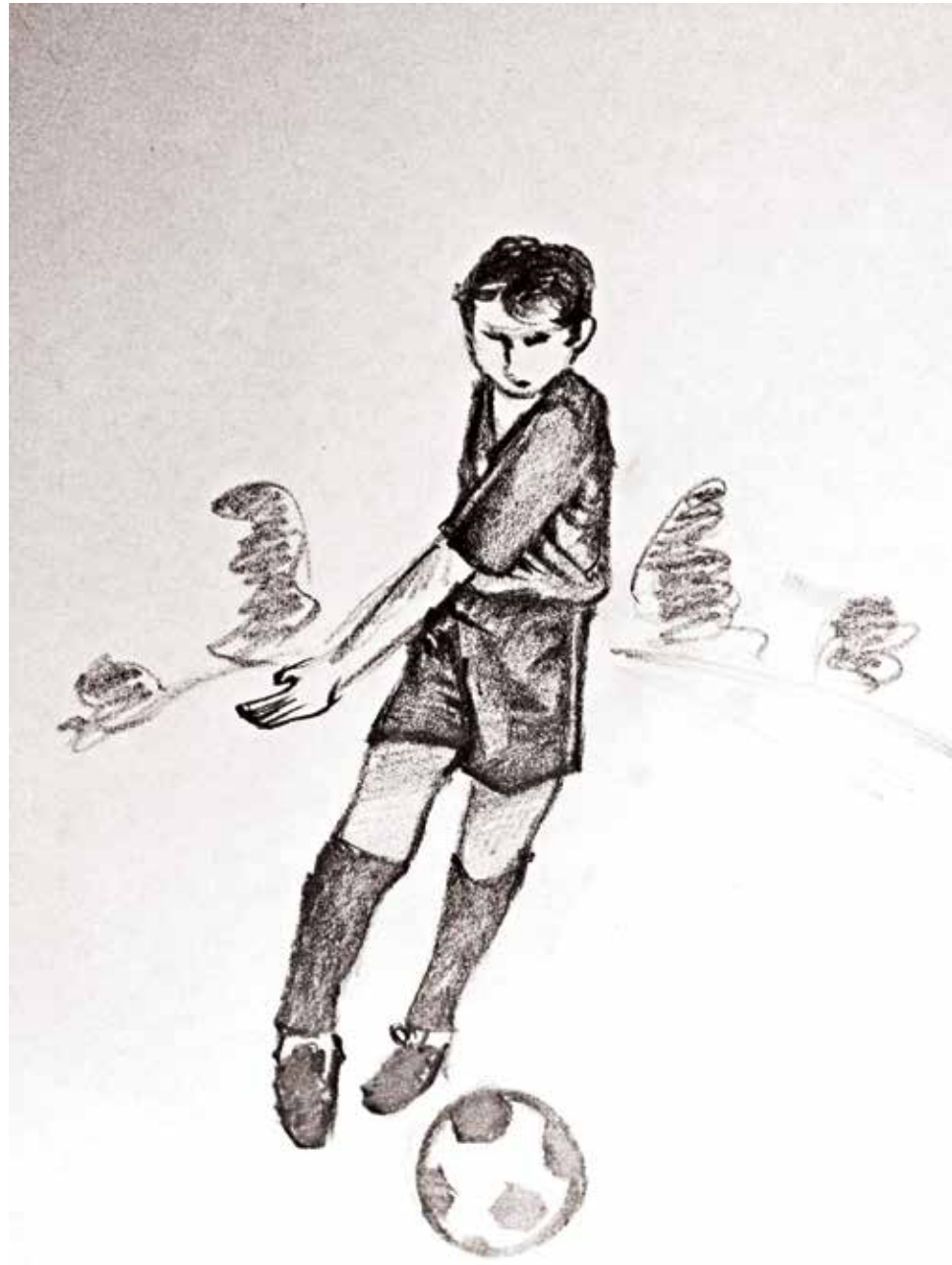

दादाजी से देखी नहीं जा रही थी। वह सोचते थे कि बच्चे अगर खेलें नहीं तो वे कैसे बच्चे।

एक शाम दादा जी वर्माजी से मिलने गए। उन्हें देखते ही वर्माजी बोले–''मुझे पता है बच्चों ने आपको भेजा होगा। मगर इनके शोर ने तो हमारा जीना मुश्किल कर दिया है। ऊपर से फुटबॉल की धड़ाम धूं।''

दादाजी वर्माजी की बातें सुनते रहे फिर बोले–''वर्माजी, जब आप छोटे थे, कभी खेलने के लिए डांट पड़ी है?

''अजी आप कहते हैं कभी। रोज ही जरा सी देर हो जाती लौटने में, तो यही सुनना पड़ता था, जरूर कहीं खेलता रह गया होगा।''–वर्माजी ने कहा। उनकी बात सुनकर दादाजी मुसकराए। पूछा–''तब कैसा लगता था आपको।'' ''कैसा लगेगा? बहुत बुरा लगता था।''

''यही तो मैं आपको बताने आया हूं। इन बच्चों को भी बहुत बुरा लग रहा है। आप उन्हें खेलने नहीं दे रहे हैं।'' –दादाजी बोले।

''यह क्या बात कही आपने? मैंने उन्हें खेलने से कब रोका है। हां मेरे घर में फुटबॉल आकर गिरेगी तो वापस नहीं मिलेगी। बाकी वे कुछ भी खेलें।''

''आपको तो पता ही है खेलते वक्त ऐसा हो जाता है। किसी बच्चे ने जान–बूझकर तो फुटबॉल नहीं फेंकी होगी आपके घर।''

''आप सिर्फ मेरी ही बात क्यों कर रहे हैं? इन बच्चों की धमाचौकड़ी से तो पूरा मोहल्ला परेशान है।''–वर्माजी ने नाराज होते हुए कहा।

''आपकी नाराजगी दूर हो जाएगी, अगर बच्चे सॉरी कहें।''

''सॉरी से क्या? सॉरी कह दिया और शीशे तोड़ दिए तो?''–वर्माजी ने हाथ हिलाए।

दादाजी को भी उनकी बातें सुनकर गुस्सा आने लगा। वह उठे और बाहर चले आए। बाहर खड़े बच्चे उनका इंतजार कर रहे थे। लेकिन दादाजी ने उन्हें कुछ नहीं बताया। वह समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे ऐसा हो सकता है कि बच्चे खेल भी सकें और किसी को नुकसान भी न हो।

अगले दिन दादाजी को अपने एक दोस्त की बेटी की सगाई में जाना था। वहां से लौटते शाम हो गई। घर के वरांडे में अचानक उन्हें कुछ आवाजें सुनाईं दीं। बाहर निकले, तो देखा सामने वर्माजी अपनी पोती विभा के साथ खड़े हैं। बोले–''भाई साहब माफ करना इस बच्ची ने मेरी आंखें खोल दीं। आपके जाने के बाद इसने कहा कि आप उन बच्चों से खेलने के लिए मना कर रहे हैं। क्या आप मुझे भी कभी नहीं खेलने देगें । पड़ोस वाले दादा जी आपसे मिलने आए और आपने उनसे इतना बुरा व्यवहार किया। मेरे साथ चलकर उनसे सॉरी बोलिए। भाई साहब मुझे माफ कर दीजिए।'' दादाजी ने वर्माजी को गले लगा लिया। विभा को फौरन जेब से निकालकर टॉफियां दीं। टॉफी खाते हुए उसने फुटबाल बाहर खड़े बच्चों की तरफ उछाल दी।

अगले दिन से तो बस कमाल ही हो गया। दादाजी के साथ वर्मा जी भी बच्चों का खेल देखते और खूब जोश बढ़ाते।

.....

लाल रिबन वाली नन्हीं परी

प्रकाश मनु

कुप्पू स्कूल से आकर सीधे अच्छन बाबू की बगिया की ओर भागा। वही तो था उसका खेल का मैदान, जहां कबड्डी, छुपमछुपाई, गेंदतड़ी और चकरी फेंकने से लेकर पता नही कौन–कौन से नए–पुराने खेल चलते ही रहते थे और बच्चों का मेला–सा जमा रहता था। पर इधर कुछ दिनों से कुप्पू का मन तो बस बेंडमिंटन में रमा हुआ था और धीरे–धीरे उसका हाथ सधता जा रहा था।

फिर इस खेल में उसका जोड़ीदार था देबू–देबू घोषाल जो पूरे मोहल्ले में बैडमिंटन का उस्ताद था। कुप्पू को भी उसने बढ़िया सर्विस से लेकर, कलाई के घुमाव के साथ कलात्मक शॉट्स लगाने और सामने वाले को यहां–वहां दौड़ाने और छकाने के एक से एक लाजवाब गुर सिखा दिए थे। कुप्पू को आजकल प्रैक्टिस में मजा आता था। इसलिए स्कूल से आते ही खाने के दो–चार ग्रास गले में डालकर सीधे अच्छन बाबू की बगिया की ओर दौड़ पड़ता था।

पर आज बादलों वाला दिन था। थोड़ी देर पहले बादल खूब बरस चुके थे। अब भी मैदान पूरी तरह सूखा नहीं था। शायद इसीलिए कुप्पू का दोस्त देबू नहीं आया था। या फिर हो सकता है, किसी काम में लग गया हो। कभी–कभी मम्मी उसे इसी समय साईकिल पर पापा के ऑफिस में गरमा–गरम पकौड़े या फिर कोई और स्पेशल पकवान ले जाने के लिए भेज देती थीं। और फिर देबू की पूरी शाम इसी चक्कर में निकल जाती थी।

कुप्पू बोर होकर सोच रहा था, 'ओह, मौसम कितना अच्छा है। एकदम खुशनुमा और अब तो बूंदे भी नहीं पड़ रहीं। पता नहीं, देबू क्यों नहीं आया ? उसने पहले बताया भी नहीं। अब मैं किससे खेलूं ?'

वह मन मारकर रैकिट कंधें पर रखे, इधर–उधर टहल रहा था। इतने में लाल रिबन वाली एक छोटी–सी बच्ची आई। प्यार से बोली, ''कुप्पू भैया, मैं खेलूं तुम्हारे साथ ?''

कुप्पू ने ध्यान से देखा, लड़की छोटी–सी थी, पर थी बड़ी समझदार। उसने लाल बुंदकियों वाला बड़ा सुंदर पीला फ्रॉक पहना हुआ था। देखने में चुस्त। बातें भी खूब अच्छी करती थी।

कुप्पू को हैरानी हुई, यह जरा–सी लड़की क्या बैडमिंटन खेलती होगी ? इसके साथ खेल तो जरा भी नहीं जमेगा। उलटे बोरियत ही होगी। पर भला वह मना भी कैसे करे ?

''अच्छा तो .....तुम्हें ठीक से खेलना आता है ना'' कुप्पू ने बड़े अनमने ढंग से पूछा। ''यह मैं क्यों बताऊं ? मेरे साथ खेलोगे तो खुद ही जान जाओगे।'' कहकर वह छोटी से लड़की फिर से हंसी। फिर बोली, ''मेरा नाम टुलटुल है। बड़ा अजीब है ना आओ खेलें।''

कुप्पू को हंसी आ गई। बोला, ''टुलटुल अजीब नाम तो नहीं है। हां, पर कुछ अनोखा–सा है। छोटा–सा, सुंदर नाम।''

और फिर थोड़ी देर में खेल शुरू हो गया। बल्कि शुरू क्या हुआ, अच्छा–खासा जम गया।

कुप्पू ने देखा टुलटुल खेल में ज्यादा होशियार तो नहीं थी, पर एकदम बुद्धू भी नही थी। उसे अपने बढ़िया कलात्मक शाट्स से छकाना कोई मुश्किल नहीं था। फिर देबू ने जो उस्तादी सिखाई थी, वह भला कब काम आती? थोड़ी देर में ही टुलटुल नेट पर आगे–पीछे और एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ते बेहाल हो गई। उसने भी कुछ अच्छे शॉट्स लगाए थे, पर कुप्पू के लिए उनकी काट क्या मुश्किल थी। कुप्पू ने बता की बात में उसे हरा दिया।

इस पर टुलटुल उदास हो गई। बेहद उदास। रूआंसी होकर बोली, ''मैं शायद बुद्धू हूं। एकदम बुद्धू! है न कुप्पू ? मुझे अच्छा खेलना नहीं आता। मुझे.....मुझे शायद तुमसे खेलना ही नहीं चाहिए था। घर के लोग भी कहते हैं, कि टुलटुल बुद्धू है, इसे कोई भी काम ठीक से नहीं आता।''

''अच्छा, ऐसा कहते हैं!'' सुनकर कुप्पू को थोड़ा दुख हुआ। उसकी जीत की खुशी एकदम काफूर हो गई।

''अब तो तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे ना'' टुलटुल ने उदास होकर कहा। कुप्पू को डर लगा, कहीं अभी–अभी यह पगली लड़की रोना न शुरू कर दे।

''अरे वाह, खेलूंगा क्यों नहीं! जरूर खेलूंगा। तुम इतना अच्छा खेलती हो। जीत–हार से क्या होता है।'' कुप्पू उसे तसल्ली देता हुआ बोला। पता नहीं क्यों, उसे टुलटुल बहुत अच्छी लगने लगी थी। उसने सोचा, 'भला मुझे खेल में ऐसी उस्तादी दिखाने की क्या जरूरत थी? खैर, अब मुझे कुछ ऐसा करना चाहिए, जिससे टुलटुल का हौसला बढ़े।'

अबके कुप्पू फिर से टुलटुल के साथ खेला, पर उसने एक के बाद एक बड़ी बेवकूफी वाली गलतियां की और फिर आखिर हार गया।

टुलटुल खुश थी। बोली, ''अरे वाह, मैंने तुम्हें हरा दिया। मुझे यकीन नहीं आता कि मैंने सचमुच तुम्हें हरा दिया। कुप्पू, तुम तो अच्छे खिलाड़ी हो। सब लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं। कहते हैं, बैडमिंटन में कुप्पू का कोई जवाब नहीं। इसका मतलब, मैं भी कोई इतनी बुद्धू या कच्चड़ नहीं हूं।'' ''नहीं–नहीं ! तुम बिल्कुल कच्चड़ नहीं हो। किसने कह दिया ? तुम तो बहुत अच्छा खेलती हो।'' कुप्पू ने कहा तो टुलटुल का चेहरा खिल गया।

''सच्ची कह रहे हो ना? चलो, फिर खेलें।'' टुलटुल उत्साह से भरकर बोली। खुशी के मारे उसकी गरदन अजब ढंग से हिल रही थी और साथ ही सिर पर बंधा लाल रिबन भी।

इस बार भी कुप्पू जान–बूझकर ऐसे खेला कि टुलटुल जीती और वह हार गया। टुलटुल बड़ी खुश हुई। बोली, ''अरे वाह कुप्पू, मैंने तुम्हें हरा दिया। मैं इतनी खुश हूं, इतनी खुश कि बता नहीं सकती।''

''तुम तो वाकई अच्छी खिलाड़ी हो। चाहो तो कुछ दिनों में बैडमिंटन की चैंम्पियन हो सकती हो!'' कुप्पू ने उसकी हिम्मत बढ़ाई।

''सच.....?'' खुशी के मारे उसकी चीख निकल गई।

अब तो टुलटुल रोज कुप्पू के साथ बैडमिंटन खेलती और वह सचमुच इतनी होशियार हो गई कि कुप्पू बहुत संभलकर खेलता, तो भी मुश्किल से उसका मुकाबला कर पाता था। वह मन ही मन कहता, ''वाकई टुलटुल में खेल की स्प्रिट बहुत है। बस

थोड़ा–सा हौसला देने की जरूरत है। फिर तो.....।''

फिर एक दिन शहर के मशहूर झूला पार्क में बैडमिंटन की प्रतियोगिता रखी गई। दूर–दूर से बच्चों की टीमें उसमें हिस्सा लेने आई।

टुलटुल खूब जमकर खेली और लड़कियों में अव्वल आई। उसकी चुस्ती, उसकी फुर्ती, तेज शॉट्स और सामने वाले खिलाड़ी को उलझाए रखने की कला–हर चीज बेजोड़ थी। जीतने के बाद उसका चेहरा खुशी से दमक रहा था। प्राइज में मिला बड़ा–सा चांदी का कप लेकर वह कुप्पू के पास आई। बोली, ''थैंक्यू कुप्पू, अब घर के लोग भी मुझे प्यार करने लगे हैं। वो कहते हैं, टुलटुल तो वाकई बड़ी होशियार है, हमें तो पता ही नहीं था। तुम्हारे साथ खेलकर ही मुझमें इतनी हिम्मत और आत्मविष्वास आ गया कि अब बिलकुल डर नहीं लगता।''

''चाहो तो ऐसे ही जीवन के हर फील्ड में आगे बढ़ सकती हो।'' कुप्पू ने बढ़ावा दिया, ''तुम तो होशियार हो, वाकई होशियार!''

''तो मैं बुद्धू नहीं हूं न ?'' कहते हुए टुलटुल ने अजब ढंग से गरदन हिलाई।

''बिल्कुल नहीं!'' कुप्पू हंसा तो साथ ही टुलटुल भी हंस दी। अब वह खुश रहती थी और खूब हंसती थी। कुप्पू ने उसका नाम 'लाल रिबन वाली नन्हीं परी' रख दिया था। और उसने यह तो बिलकुल नहीं बताया कि शुरू–शुरू में वह जान–बूझकर हार जाता था, ताकि टुलटुल के मन में जमकर खेलने और जीतने की इच्छा पैदा हो। अब टुलटुल खेलती नहीं थी, खेल में उसकी कलाई जैसे नाचती थी, और सामने वाले को नचाती थी। उसके बेहतरीन शॉट्स देखकर सभी दंग रह जाते। उसका खेल देखने के लिए भीड़ लग जाती।

ऐसे क्षणों में टुलटुल का चेहरा आत्मविश्वास से दमक रहा होता था। कुप्पू उसे देखकर कभी–कभी अपने आप से कहता था, ''हार भी तो कितनी बड़ी जीत होती है, यह मैंने उस नन्हीं–सी परी टुलटुल से सीखा है।''

.....

मैं जीत गया पापा

प्रकाश मनु

जानकीबाई हाईस्कूल महाराजपुर के स्कूल के खेल के मैदान में उस दिन दर्शक टूट पड़े थे। स्कूल के विद्यार्थी और अध्यापक तो उत्साहित थे ही, पूरे महाराजपुर में ही एक अजब सी सनसनी और उत्तेजना थी। आज जानकीबाई हाईस्कूल की फुटबॉल टीम का शहर के आदर्श मॉडल स्कूल के बच्चों के साथ मैच होना था ।

आदर्श मॉडल हाई स्कूल की फुटबॉल टीम का दूर–दूर तक नाम था। पिछले चा. र–पांच वर्षों में शायद ही कोई मैच वह हारी हो। पर इधर जानकीबाई हाई स्कूल के बच्चों ने अपनी पुरानी टीम में जान डाल दी थी। उसके खिलाड़ियों ने खूब प्रैक्टिस की थी। प्रिंसिपल श्यामलाकांत जी खूब खुश थे, और ये देखकर कि बच्चों में खूब उत्साह है। वे बार–बार यह दोहराते थे कि बच्चों, ''मुझे उम्मीद है कि तुम लोग एक नया इतिहास रच डालोगे। जानकीबाई हाई स्कूल की फुटबॉल टीम अब अजेय कहलाएगी।''

और सचमुच जानकीबाई हाईस्कूल के बच्चों ने इधर एक–एक कर कई मैच लगातार जीते थे। और पिछले छह महीनों में तो उन्होंने सचमुच इतिहास बदलकर दिखा दिया। शायद ही कोई मैच हो जिसमें जानकीबाई टीम के उत्साही बच्चे हारे हों। यहां तक कि एक बार स्कूल के बच्चों और अध्यापकों के बीच भी मैच हुआ था और उसमें बच्चों ने इतना बढ़िया खेल का प्रदर्शन किया था कि अध्यापक हैरान रह गए। शुरू में देखकर लगता था कि बच्चे हारेंगे। भला उम्र में इतने बड़े और होशियार अध्यापकों के आगे वे कैसे टिकेंगे पर टीम के कप्तान सुनील और उस टीम के दबंग खिलाड़ियों नितिन, जस्सू और बिल्लू ने इस चुनौती का इतना डटकर मुकाबला किया कि सामने वाली टीम के पसीने छूट गए और दर्शकों की तालियों ने समा बांध दिया। तब हारे हुए अध्यापकों ने अपने ही विजेता शिष्यों को आशीर्वाद दिया, ''विजयी भव।''

टीम के होनहार खिलाड़ियों में जस्सू स्कूल के चपरासी मेवालाल का बेटा था, पर वह उनमें सबसे आगे था। पर उसमें खेलकूद की इतनी लगन थी कि उसे देखकर

सुनील चकराया उसने अपनी टीम के बाकी खिलाड़ियों से पूछा और फिर झटपट जस्सू को टीम में ले लिया । जस्सू शुरू से ही तेज था, पर बाद में तो उसके खेल में इतना निखार आया कि कई बार कप्तान सुनील से उसने ज्यादा गोल किए और ऐसे हालात में गोल किए कि कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। लिहाजा दर्शकों की उसे खूब वाहवाही और तालियां मिलीं।

इस बार लोग उत्सुकता से देखने पहुंचे थे कि आखिर मैच में कौन सी टीम जीतेगी। जानकीबाई हाई स्कूल के बच्चों ने इस बार खासी तैयारी की थी और छोटी से छोटी बात पर विचार–विमर्श किया था। वे पूरी रणनीति बनाकर खेल के मैदान में उतरे थे और एड़ी से चोटी तक का जोर लगाकर यह मैच हर हाल में जीत लेना चाहते थे। साथ ही इधर सुनील और जस्सू के खेल में भी खासा सुधार हुआ था। दोनों ने खूब कमाल दिखाया, पर जाने क्यों जस्सू के आगे सुनील कुछ फीका पड़ जाता था। जस्सू में मैच जीतने का जो जोश और फुर्ती थी, सुनील में वह न थी। लिहाजा सुनील ने जब–जब गोल करना चाहा, उसका निशाना चूका, लेकिन जस्सू हर बार कामयाब हुआ। एक के बाद एक उसने तीन गोल ठोक दिए।

दर्शकों ने खूब तालियां बजाकर उसका स्वागत किया। लग रहा था, महाराजपुर के दर्शकों ने ऐसा फुटबॉल खिलाड़ी कभी देखा ही नहीं। पर इस पर सुनील के पापा श्रीवास्तव साहब जो शहर की कपड़ा मिल के मैनेजर थे, जाने क्यों कुढ़ गए। बड़े हों या छोटे, सभी जस्सू के गोल करने पर जोश में भरकर तालियां बजा रहे थे। पर श्रीवास्तव साहब के हाथ एक बार भी नहीं उठे, बल्कि उनका चेहरा मानों सफेद हो गया था।

घर आकर उन्होंने सुनील को बुलाया। कहा, ''मैंने तुम्हें कहा था न, इस चपरासी के बेटे को ज्यादा लिफ्ट मत दो। पर तुम नहीं माने और आज देख लो।''

सुनील हक्का–बक्का। वह समझ नहीं पाया कि पापा कहना क्या चाहते हैं। उसे तो लगा था कि उसकी टीम जीती है तो पापा खुश होकर उसकी तारीफ करेंगे, पर .....!

मैंने प्रिंसिपल श्यामलाकांत जी से कहा कि ''वे उसे स्कूल से निकाल दें। ऐसे गंदे बच्चे को मैं बिल्कुल पसंद नहीं करता जो इतना घमंडी और खुदगर्ज हो। हर बार तुमसे बॉल छीनकर उसने आगे बढ़कर गोल किया, हर बार ताकि ....।'' कहते कहते सुनील के पापा का चेहरा मारे क्रोध के लाल हो गया।

''न....नहीं, पापा तो नहीं।'' सुनील हक्का–बक्का था और पापा की बातें उसे अजीब लग रही थीं। पर उनका विरोध करने का मतलब था, उनका गुस्सा और भड़काना। लिहाजा वह चुप हो गया।

शायद कुछ देर बाद शायद पापा का गुस्सा शांत हो जाए! सोचकर सुनील बाहर लॉन में चला गया और वहां खेलती हुई चिड़ियों को देखने लगा।

उसके बाद भी सुनील जस्सू के साथ अपने स्कूल की फुटबॉल टीम में खेलता रहा, पर जाने क्यों उसका मन भी बदल सा गया था। उसे लगने लगा था कि जस्सू के सामने उसकी चमक फीकी पड़ जाती है और सारी वाहवाही जस्सू के हिस्से आ जाती है। यों होते–होते जो नहीं होना था वही हुआ, यानी सुनील और जस्सू की दोस्ती में भी दरार पड़ गई।

उसके बाद सुनील जान–बूझकर कोशिश करता कि खेल में वही हावी रहे और सबसे अलग नजर आए। जस्सू को काम से कम गोली करने का मौका मिले। पर जस्सू ने जाने कैसा जादू साध रखा था कि वह दूर से भी किक करता तो बॉल सीधी गोल में जाती और कई बार तो उसका खेल इतना लाजवाब होता कि विपक्षी टीम के खिलाड़ी भी उसकी जी भरकर तारीफ करते।

इससे सुनील इतना चिढ़ जाता कि अपनी टीम की जीत के बावजूद वह जस्सू को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाता था।

एक–दो बार तो हालत यह हुई कि विपक्षी टीम के कप्तान ने जस्सू का कमाल देख, जमकर दाद दी, ''सुनील भाई तुम्हारी टीम में जस्सू अनोखा खिलाड़ी है। वह तो जैसे फुटबॉल का जादूगर है। मेरी ओर से उसे बधाई देना।''

इस पर सुनील ने कुढ़कर कहा, ''हां जस्सू ठीक है पर उसे सिखाया तो मैंने ही है। वैसे हमारे यहां तो सभी खिलाड़ी अच्छे हैं और बहुत से तो जस्सू से लाख दर्जे अच्छे हैं।''

सुनकर सामने खड़ा विपक्षी टीम का कप्तान हैरान रह गया। और सुनील गुस्से से अपना चेहरा फुलाए एक और हटकर खड़ा हो गया।

इधर जस्सू सुनील को अपना प्यारा दोस्त और बड़ा भाई मानता आ रहा था। वह मानता था कि उसके खेल को निखारने और धार देने में सुनील ने वाकई मेहनत की है। बार–बार सभी से वह यह कहता था और सुनील से भी। लेकिन सुनील उसकी बातों का जवाब थोड़े रूखेपन से देता, तो उसे धक्का पहुंचता।

फिर भी जस्सू किसी तरह मन को समझा लेता। सोचता, ''शायद सुनील का मूड कुछ ठीक नहीं है, वरना वह तो मुझे इतना प्यार करता है। उसी ने तो मुझे आगे आने का इतना मौका दिया था, वरना मैं था ही कहां?

अब जस्सू का एक ही सपना था कि वह बड़ा होकर फुटबॉल का अच्छा खिलाड़ी बने। इतना अच्छा खिलाड़ी की सारी दुनिया में भारत का नाम ऊंचा करे और खेल के मैदान में इतना अच्छा प्रदर्शन करे कि लोग उसका प्रदर्शन देखकर झूम उठें।

जस्सू के पिता मेवालाल जानकीबाई स्कूल में चपरासी थे और बेटे को ज्यादा सुविधाएं नहीं दे पा रहे थे। फिर भी जस्सू आगे निकलता जा रहा था। देखकर उनकी छाती फूल उठती। लेकिन उन्हें क्या पता था कि जस्सू की यही सफलता सुनील के पापा श्रीवास्तव साहब के मन में करक रही थी और मुसीबत यह थी कि श्रीवास्तव साहब एक बड़ी फैक्ट्री के मालिक होने के साथ–साथ स्कूल के मैनेजर भी थे।

श्रीवास्तव साहब जब–तब स्कूल में मुआयने के लिए आते थे और जाने क्या बात थी कि उनका गुस्सा कम होने के बजाय उलटा और भड़कता जा रहा था। उन्हें लगता था कि जस्सू के हिस्से आने वाली तालियां सुनील को मिलनी चाहिए। पर उफ, यह चपरासी का बेटा। इसलिए जब वे स्कूल में आते और मेवालाल उनकी आंखों के आगे

आ पड़ता तो उनका गुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुंचता।

अब वे उस पर कामचोरी का आरोप लगाकर बात–बात में तंग करने लगे। स्कूल से निकालने की धमकी देते हुए कहते, ''जैसे तुम वैसा ही तुम्हारा बेटा। बिल्कुल नालायक हो तुम। मैं तुम्हें एकदम बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे अपनी मनहूस शक्ल मत दिखाया करे।''

इससे मेवालाल यह तो समझ ही गया कि श्रीवास्तव साहब उसके बेटे की तरक्की से परेशान हैं और वही गुस्सा उलटकर जब–तक उस पर उतर रहा है। पर वह सोचता, 'भला मैं क्या करूं? क्या जस्सू से यह कहूं कि वह जान–बूझकर पीछे रहा करे? फुटबॉल सामने आए तो भी किक न किया करे और गोल हरगिज न करे।

एक बार तो मेवालाल से सोच ही लिया था कि वह जस्सू से कहे कि वह फुटबॉल छोड़कर कोई और खेल खेलना शुरू कर दे। पर फिर उसके मन ने उसे धिक्कारा, 'अरे, मैं कैसा पिता हूं ! पिता का काम बेटे के आगे दीवार खड़ी करनी है या उसके लिए रास्ता बनाना है? मैं भला उसकी मुश्किलों क्यों बढ़ाऊं उसके रास्ते में रोड़े क्यों अटकाऊं?'

पर श्रीवास्तव साहब लगातार अपनी कोशिशों में जुटे रहे। उन्होंने प्रिंसिपल श्यामला. कांत पर दवाब बढ़ाना शुरू किया कि वह मेवालाल को नौकरी से हटा दें या फिर कम–से–कम जस्सू को ही स्कूल से निकाल दें। प्रिंसिपल श्यामलाकांत मेवालाल को भी चाहते थे और जस्सू को तो जी–जान से प्यार करते थे। वे जानते थे न मेवालाल का कसूर है और न जस्सू का। बल्कि जस्सू ने तो जानकीबाई हाईस्कूल के यश में चार चांद ही लगाए। पर उन पर श्रीवास्तव साहब का दवाब इतना बढ़ता जा रहा था कि आखिर न चाहते हुए भी उन्हें अप्रिय निर्णय लेना पड़ा।

....हां जस्सू को बिना बात स्कूल से निकालने की बजाय उन्होंने यही उचित समझा कि उसे अलग से बुलाकर समझाया जाए। जस्सू को एकांत में बुलाकर उन्होंने प्यार से उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, ''बेटे, आज मुझे एक ऐसा फैसला लेना पड़ रहा है जिसके लिए जिंदगी भर मैं शर्मिंदा रहूंगा और तुमसे आंख नहीं मिला पाऊंगा।

मैं चाहता हूं कि तुम इस स्कूल से नाम कटा लो, क्योंकि श्रीवास्तव साहब का दबाव मुझ पर बढ़ता जा रहा है। वे तुमसे और तुम्हारे पिता मेवालाल दोनों से बेहद नाराज हैं। पर मेवालाल को नौकरी से निकालूं तो तुम्हारे घर पर ज्यादा संकट आ जाएगा। इसलिए बहेतर है कि तुम ही स्कूल छोड़ दो। हां, मेरा प्यार, मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा और मुझे उम्मीद है, एक दिन तुम बहुत बड़े खिलाड़ी बनोगे और दूर–दूर तक तुम्हारा नाम होगा।''

कहते–कहते प्रिंसिपल श्यामलाकांत जी की आंखें भीग गईं। और जस्सू तो एकदम हक्का–बक्का रह गया। हां, पर पिछले कुछ दिनों से उसके पापा ने इशारों में उसे बहुत कुछ बता दिया था। तब से वह समझने लगा था कि श्रीवास्तव साहब कुछ–न–कुछ गड़बड़ तो करेंगे ही। उसने किसी तरह मन को पक्का किया प्रिंसिपल श्यामलाकांत जी के पैर छुए और उन्हें प्रणाम करके बाहर आ गया।

अब जानकीबाई हाईस्कूल की फुटबॉल टीम ने कई मैच जीते, कई इनाम और शील्ड उसे मिलीं। जस्सू के हिस्से में आने वाली तालियां अब सुनील को मिलतीं। श्रीवास्तव साहब इससे खासे खुश थे। पर जस्सू को भीतर–ही–भीतर कचोट होती। वह अंदर–ही–अंदर आंसू बहाता। फिर किसी तरह मन को समझा लेता। सोचता, अच्छा रहा कि श्रीवास्तव साहब का गुस्सा मुझ पर ही उतरा। अगर वे मेरे पापा को नौकरी से निकाल देते तो?

शहर में जानकीबाई स्कूल और आदर्श मार्डन स्कूल की टीमें ही फुटबॉल में सबसे आगे थीं और महीने में एक बार उनका मैच जरूर होता था। और मैच खाली स्कूल के बच्चों के लिए ही नहीं बल्कि पूरे महाराजपुर शहर के लोगों के लिए खासे रोमांच की शक्ल ले लेता।

जस्सू के जाने के बार भी जानकीबाई हाईस्कूल की फुटबॉल टीम ने लगातार तीन बार आदर्श माडल हाईस्कूल की टीम को हराया था। पर एक बार साफ देखने में आ रही थी कि जस्सू के बगैर अब जानकीबाई स्कूल की फुटबॉल टीम में वह पुराना दमखम नहीं रह गया था। देखने वाले सभी दर्शक यह महसूस कर रहे थे।

उधर आदर्श मॉडल स्कूल की फुटबॉल टीम में एक अलग तरह की खलबली मची हुई थी। जस्सू के जाने के बाद वे सोचते थे कि जानकीबाई हाईस्कूल की टीम को आसानी से हरा देंगे, पर अब ..... ? कुछ–न –कुछ तो करना होगा। एक दिन आदर्श मॉडल स्कूल के स्पोर्ट्स टीचर दीनानाथजी ने जस्सू को अपने घर बुलाया। बोले. ,''जस्सू, तुम कहो न कहो, पर तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। मुझे पता है, फुटबॉल तुम्हारे लिए महज एक खेल नहीं, बल्कि जिंदगी की तरह है और मुझे पक्का यकीन है कि तुम आगे चलकर फुटबॉल के लाजवाब खिलाड़ी बनोगे। पर तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ, उसे देखकर मैं ही नहीं बल्कि हर सच्चे खिलाड़ी और सच्चे इनसान को दुख होगा। यही सोचकर मैंने तुम्हें बुलाया है। सिर्फ यह कहने के लिए कि अगर तुम चाहो तो तुम्हें खेलने का मौका हमारा स्कूल दे सकता है। तुम चाहो तो आदर्श मॉडल स्कूल में न सिर्फ कल से ही तुम्हारा एडमिशन हो जाएगा, बल्कि तुम्हारी फीस भी माफ कर दी जाएगी और कल से हमारी फुटबॉल टीम के कप्तान तुम होगे जस्सू।'' सुनकर जस्सू को यकीन नहीं हुआ। खुशी के मारे उसकी आंखों में आंसू छलछला रहे थे। बोला, ''सर आप सच कर रहे हैं ना!''

''मैं वादा करता हूं कि मैं इसकी पूरी कोशिश करूंगा।'' दीनानाथ जी बोले, ''आज ही मैं प्रिंसिपल मनचंदा जी से बात करूंगा। मुझे यकीन है कि वे जरूर मान जाएंगे। वैसे भी वे तो हर पल तुम्हारी तारीफ करते हैं।''

और सचमुच जैसे आदर्श मॉडल स्कूल के स्पोर्ट्स टीचर दीनानाथजी ने कहा था, वही हुआ। जस्सू का आदर्श मॉडल स्कूल में दाखिला हो गया। और उसके साथ ही वह आदर्श मॉडल स्कूल की फुटबॉल टीम का कप्तान भी बन गया। उस दिन आदर्श माडल स्कूल की पूरी फुटबॉल टीम रोमांचित थी और पूरे स्कूल में इस कदर खुशी की लहर दौड़ गई, जैसे जस्सू का आना किसी अनोखे पर्व की तरह हो।

और जस्सू....? उसने उसी दिन से खेल के मैदान में इस कदर जोरदार अभ्यास करना षुरू कर दिया, मानों उसके खेल की शुरूआत तो अब हुई है।

कोई पंद्रह दिन में जस्सू ने न सिर्फ अपने खेल में नई धार पैदा की, बल्कि आदर्श मॉडल स्कूल की टीम में भी नई जान पैदा कर दी। कोई पंद्रह दिन इसमें लगे और

इस बीच शहर के दूसरे स्कूलों की दो टीमों को उसकी टीम ने इतने मजे में हरा दिया कि लोग जान गए कि अब आदर्श मॉडल स्कूल की टीम पुरानी वाली टीम नहीं रही। जस्सू के रूप में उसे एक जादूगर मिल गया।.....और अब कुछ ही रोज बाद वह रोमांचक मैच होना था जिसका पूरे महाराजपुर शहर के लोगों को इंतजार था। यह जानकीबाई हाईस्कूल और आदर्श मॉडल स्कूल की टीमों के बीच खेले जाने वाला रोमांचक मैच था।

अब स्थितियां बदल चुकी थीं और एक नया इतिहास खुद को लिखे जाने की प्र. तीक्षा में था। बिन कहे महाराजपुर के लोग यह जान रहे थे। सबकी आंखों में गहरी उत्सुकता थी। पूरे महाराजपुर में एक तरह की सनसनी और उत्तेजना का माहौल था और जिस इतवार को शाम के समय यह खेला होना था, उस दिन जानकीबाई हाईस्कूल के खेल के लंबे–चौड़े मैदान में खाली स्कूल के विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि सारे शहर के बच्चे और किशोर उत्सुकता से इक्ट्ठे हो गए थे, फिर चाहे वे किसी भी स्कूल के हों। यहां तक कि बड़ी उम्र के लोगों की भी खासी भीड़ फुटबॉल मैदान में उमड़ पड़ी थी। जिनकी फुटबॉल के खेल में दिलचस्पी थी, वे तो आए ही थे। पर जिनकी ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी, वे जस्सू का खेल या उसकी एक झलक देखने आये थे। भला कौन ऐसा खिलाड़ी है जिसने रातोंरात इतिहास बदल दिया?

और मैच शुरू हुआ तो मैदान में इस कदर सन्नाटा था कि सुई भी गिरे तो आवाज हो। सबकी आंखों में गहरी उत्सुकता थी।

शुरू में जानकीबाई हाईस्कूल की टीम ने थोड़ा आक्रामक अंदाज में खेलने की को. शिश की। पर जल्दी ही उनका जोश ठंडा हो गया, जब आदर्श मॉडल स्कूल की टीम ने खेल शुरू होने के पांच–सात मिनट के अंदर ही लगातार दो गोल कर दिए। और ये दोनों गोल जस्सू ने किए थे। जस्सू को अपने सामने देखकर सुनील का चेहरा उतर गया था और जितना वह अच्छा खेलने की कोशिश करता, उतना ही उसके हाथ–पैर कांपने लगते और वह निशाना चूक जाता। बिल्कुल गोल के पास पहुंचकर भी वह गोल नहीं कर पा रहा था और जस्सू की टीम सहजता से गोल किए जा रही थी।

देखते–ही–देखते दो गोल और हो गए, तो जानकीबाई स्कूल के खिलाड़ियों की हालत खराब होने लगी। अपने खिलाड़ियों का जोश बढ़ाने के लिए स्कूल के बच्चे जोर–जोर से तालियां बजा रहे थे। कुछ जस्सू को हूट करने की कोशिश भी कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि मैच जानकीबाई के खेल के मैदान में हो रहा है तो जरूर हमारी टीम जीतेगी ही। उसे जीतना ही चाहिए!..... पर आदर्श मॉडल स्कूल के पास इस समय जस्सू था। ऐसा खिलाड़ी जो अकेला दस के बराबर था। फिर जस्सू ने स्कूल की फुटबॉल टीम में ऐसी जान फूंक दी थी कि उसकी टीम के खिलाड़ी जब फुटबॉल को किक करते, तो वह इस कदर हवा में उड़ती नजर आती कि जानकीबाई के खिलाड़ियों के रोके न रुकती। यह देखकर उनके चेहरे उतर जाते।

सुनील का चेहरा मुरझाया हुआ था। फिर भी उसने कई बार अपनी टीम के खिलाड़ियों को चेताने की कोशिश की थी। एक–दो बार तो उसे उन्हें डांटना भी पड़ रहा था कि क्या मुर्दों की तरह खेल रहे हो। जरा जोश दिखाओ ना, पर इससे उसकी टीम के खिलाड़ी और अधिक गुस्से में आ गए और चिड़चिड़े हो गए। नतीजा यह हुआ कि मिलकर खेलने और जीतने का जोश उनमें और कम हो गया। इसी का फायदा उठाकर आदर्श मॉडल स्कूल के खिलाड़ियों ने एक–एक कर तीन गोल और ठोंक दिए।

जानकी बाई की टीम वर्षों बाद इस बुरी तरह पिटी थी। हालत यह थी कि सुनील ही नहीं, उसके किसी भी खिलाड़ी को सफलता नहीं मिल रही थी और उधर सामने वाली टीक के कप्तान जस्सू का जादू सबके सिर पर चढ़ कर बोल रहा था। आदर्श मॉडल स्कूल के सात गोलों में पांच अकेले जस्सू ने ही किए थे।

सुनील ने देखा तो उसकी हालत खराब हो गई। दिमाग चकराने लगा। अंत में उसे लगा कि उसकी आंखों के सामने अंधकार छा गया है। थोड़ी ही देर में उसे चक्कर आया और वह वहीं गिर गया। सुनील के गिरते ही हडकंप सा मच गया। जानकीबाई स्कूल की टीम के खिलाड़ियों ने मौके का फायदा उठाया और जोर–जोर से चिल्लाकर कहना शुरू कर किया, ''जस्सू ने सुनील को धक्का देकर गिरा दिया। जस्सू को मैदान से बाहर निकालो।''

पर इतने में ही जानकीबाई स्कूल के प्रिंसिपल श्यामलाकांत मैदान में आकर बोले ''मैनें खुद देखा है, जस्सू सुनील से काफी दूर था। फिर उसने भला धक्का कैसे दे दिया?''

इतने में सुनील को होश आ गया। पानी पीकर थोड़ी ताकत आई। उसे भी शोर सुनाई पड़ा। सुनकर बोला, ''नही, मुझे किसी ने नहीं गिराया। जस्सू का कोई कसूर नहीं है मैं अब ठीक हूं। खेल रुकेगा नहीं आगे चलेगा।''

और सुनील ने थोड़ा पानी पीकर और थोड़ा सुस्ताने के बाद फिर खेलना शुरू किया। इस बार वह थोड़ा संभलकर खेला। टीम के खिलाड़ियों ने भी हिम्मत दिखाई, पर बाजी उनके हाथों से निकल चुकी थी। खेल पूरा होते–होते आदर्श मॉडल स्कूल की टीम के पूरे नौ गोल हो चुके थे और सुनील की टीम एक भी गोल करने में कामयाब

नहीं हो पाई थी।

दर्शकों ने तालियां बजा–बजाकर और झूम–झूमकर जस्सू को बधाई दी। पर जस्सू का कहना था हमारे सब खिलाड़ी बहुत अच्छा खेले और कई तो मुझसे भी अच्छा खेले। बधाई खाली मुझे नहीं, पूरी टीम को दीजिए।'' यहां तक कि उसने सुनील के खेल भी जमकर तारीफ की। बोला, ''जानकीबाई की टीम भी अच्छा खेली, पर हमने टीम भावना और जीतने का जोश ज्यादा दिखाया इसलिए हम जीते।''

देखते–ही–देखते जस्सू के साथियों ने इकट्ठे होकर उसे सिर पर उठा लिया। और जुलूस बनाकर 'जस्सू जिंदाबाद' के नारों के साथ आगे चल पड़े।

तभी जस्सू को दूर एक पेड़ की नीचे खड़े अपने पापा दिखाई दिए। वे संकोच के मारे पास नहीं आए थे और दूर से ही बेटे के खेल का पूरा आनंद ले रहे थे। पापा को देखते ही जस्सू को जाने क्या हुआ कि वह तेजी से उछला और दौड़ते हुए 'पापा–पापा' चिल्लाते हुए उनके पास जा पहुंचा। पापा के पास जाते ही उनके पैर छूकर बोला, ''पापा–पापा, मैं जीत गया। मैं जीत गया पापा!.....आपका जस्सू जीत गया। अब उसे कोई पहले की तरह स्कूल से नहीं निकाल सकता।''

''हां, बेटा!'' मेवालाल के मुम्ह से ये शब्द निकले तो साथ ही उनकी आंखों से दो बूंद आंसू भी चू पड़े।

ये खुशी के आंसू थे।

थोड़ी देर में बच्चों का एक बड़ा काफिला जुलूस की शक्ल में जस्सू को कंधे पर उठाए पूरे महानगर की गलियों और सड़कों पर घूम रहा था।

सुनील के पापा श्रीवास्तव साहब ने अपने घर की छत से जस्सू और उसके जुलूस को देखा, तो उनका चेहरा सयाह पड़ गया। जिसे वे कल तक चपरासी का बेटा कहकर धिक्कारते थे, आज देखते–ही–देखते वह पूरे शहर का हीरो बन गया था।

.....

कुश्ती

योगेंद्र आहूजा

शाम हो चुकी थी जब वे वहां पहुंचे। वहां लकड़ी का एक टूटा फूटा, जर्जर गेट था, जिसके परे एक छोटा घास का मैदान और उपर ''गुरु सदानंद व्यायामशाला'' का टीन का पुराना, जंग खाया साइन बोर्ड जिसके अक्षर मिट चले थे। बोर्ड पर भव्य, फौलादी देह में एक बलिष्ठ पहलवान की तस्वीर बनी थी, वह भी धुंधली पड़ गयी थी। वे मैदान में बिखरी पत्तियों को पैरों से दबाते हुए अखाड़े की नम, मूक मिट्टी के पास खड़े हो गये। उन दोनों में से जो उम्रदराज था, गुरु सदानंद, उसने अखाड़े के कोने में स्थापित बजरंगबली की छोटी सी मूर्ति को प्रणाम किया।

– मेरे खयाल में यहीं ठीक रहेगा। गुरु सदानंद ने पलटकर दूसरे व्यक्ति से कहा। पैंतीस के आसपास का वह दूसरा शख्स चुपचाप चारों ओर देख रहा था, कुछ याद करने की कोशिश करता हुआ। वह एक मटमैली कमीज पहने था, हाथ में रेक्जीन का फूला हुआ बैग थामे, और उसके चेहरे पर ऐसी बदहवासी और थकान थी, जैसे वह बहुत दूर से, हजारों कि.मी. का सफर तय करके आया हो।

– हां, यहीं ठीक होगा। उसने एक थकी हुई आवाज में कहा।

– आपने क्या नाम बताया था अखबार का। गुरु सदानंद ने कहा। – अखबार का? वह अचानक चौंक गया । – अखबार का नाम . . . समाचार . . . समाचार संसार। हां, यही।

– कभी सुना नहीं । फोटोग्राफर को यहां का पता मालूम है?
– हां, वह आता ही होगा।

– अच्छा, वह जब तक आये, मैं तैयार हो जाता हूं। गुरु सदानंद ने कहा। – पीछे वह कोठरी देख रहे हैं, उसी में रहता है अपना सारा सामान। मुग्दर, डम्बल, वजन और वह गदा भी जो अठारह साल पहले खुद मेयर ने दी थी। उस दिन, जब

आखिरी कुष्ती लड़ी थी और फिर कुश्ती से सन्यास लिया था। यहीं हुई थी वह आखिरी कुश्ती। उस दिन क्या भीड़ थी यहां, लोग ही लोग, तिल रखने की जगह नहीं। जैसे पूरा शहर उमड़ आया हो। यहां से वहां तक बन्दनवार लगे थे, जगमगाती रोषनियां थीं। बाकायदा वर्दियों में सजा धजा एक बैंड, बाजों और नगाड़ों के साथ। लाउडस्पीकर लगे थे, एक घंटे से ज्यादा तो वक्ताओं ने ले लिया। कितनी मालायें डाली गयी थीं, मेरा चेहरा उनमें छुप गया था। उस दिन आप यहां होते तो आपके अखबार के लिये बनती एक शानदार खबर . . .मगर तब तो आप बच्चे रहे होंगे। सब अखबारों में आया था, गुरु सदानंद का सक्रिय कुश्ती से सन्यास, अब केवल शिष्यों को तैयार करेंगे। कंधे पर चमचमाती गदा के साथ शानदार तस्वीरें छपी थीं। आज भी उसी गदा के साथ फोटो खिंचवाऊंगा, अखाड़े के बीच खड़े होकर, और पीछे बैंकग्राउंड में ये बजरंगबली। ठीक रहेगा न? आप यहीं रुकें, मैं लेकर आता हूं। आपका फोटोग्राफर अभी तक आया क्यों नहीं?

– वह आता ही होगा।

गुरु सदानंद अखाड़े के पीछे की कोठरी तक गये, कुर्ते की जेब से चाभी निकालकर बहुत देर तक ताला खोलने की कोशिश करते रहे। फिर वे भीतर चले गये। वह वहीं अखाड़े के किनारे खड़ा रहा। बहुत सारा समय बीत गया। गुरु सदानंद जब बाहर आये, उसने दूर से देखा, उन्होंने अपने कपड़े उतार दिये थे, केवल लंगोट पहने थे। उन्होंने गदा की मूठ थाम रखी थी, वह पीछे पीछे जमीन पर घिसटती आ रही थी। षाम के धुंधले, सौम्य उजाले के बीच एक धीमी रफ्तार में बीच का मैदान पार करते हुए वे करीब आये और उसे देखकर चौंक गये। उसके कपड़ों और जूतों का ढ़ेर एक ओर पड़ा था। वह केवल जांघिये में था।

– यह क्या ? गुरु सदानंद ने कहा। षायद अखाड़े की मिट्टी से आपको याद आ गया कि आपके पास एक जिस्म भी है। एक ही जिस्म। इसी काया से जिंदगी भर काम चलाना है, इसलिये कभी कभी उसे भी समय देना चाहिये। ठीक है, जब तक फोटोग्राफर आये, आप कुछ व्यायाम कर सकते हैं। पत्रकार की नौकरी में आपको वक्त कहां मिलता होगा । यह इंटरव्यू . . . यह साथ–साथ होता रहेगा।

– आपने ठीक समझा, मेरे मन में यही खयाल आया। आप जैसे महान पहलवान से मिलना रोज–रोज थोड़े ही . . .

– लेकिन वह फोटोग्राफर अभी तक आया क्यों नहीं?

– कहीं घूंट मारने न बैठ गया हो। आप तो जानते ही हैं, अखबार की नौकरी में, दिन–रात की दौड़धूप, इतना टेंशन। मगर वह आयेगा जरुर, गैर जिम्मेदार नहीं है, उसे मालूम है यह फीचर ''कल के महान पहलवान गुरु सदानंद'' यह इसी इतवार को जाना है। आज ही रात भर बैठ कर लिखना होगा। आप बतायें, यह व्यायामशाला . . .

– इसका हाल तो आपके सामने ही है। उजाड़ है अब। गुरु सदानंद की आवाज में उदासी उतर आयी थी। – कभी इसका भी एक जमाना था, भीड़ लगी रहती थी। यहीं किनारे पर गद्दे और गावतकिये में अपना तख्त पड़ा रहता था। शागिर्द आते थे, पैर छूते थे, फिर अखाड़े की मिट्टी माथे से लगाते थे। अब तो . . .

वह दूसरा शख्स, पत्रकार, निर्विकार चेहरा लिये, धीमे, खामोश कदमों से चलता हुआ अखाड़े के बींचोबीच खड़ा हो गया।

– आइये, आपके साथ एक कुश्ती हो जाये। उसने वहीं से कहा।

– कुश्ती ? अरे नहीं। मैं तो आखिरी कुश्ती लड़ चुका हूं। अठारह बरस हो गये . . . अभी आपको बताया था न।

– हां, आपने बताया था। उस दिन खचाखच भरी थी यह जगह। लोग, शोर, रोशनियां। मगर वह आखिरी कुश्ती नहीं थी।

– क्या मतलब?

– आखिरी कुश्ती अभी लड़नी है आपको। आज। अब।

गुरु सदानंद उसकी ओर देखते रहे।

– क्या आप भी कुश्ती के शौकीन रहे हैं? आपको देखकर लगता नहीं। पहले कभी आपने . . .

– नहीं, सदानंद जी, कुश्ती से, पहलवानी से मेरा कोई लेना देना नहीं रहा। मेरे पिता की जरूर यह तमन्ना थी, पहलवान बनने की। बड़ा ताकतवर आदमी था वह, मगर वह भी . . .। यह काम बहुत मुश्किल है न, हरेक के बस का थोड़े ही है। इसके लिये जीवन भर की साधना चाहिये। लेकिन नहीं, गलत कहा मैंने। मैं कुश्ती लड़ता रहा हूं।

– कब? कहां? गुरु सदानंद उसे अविश्वास से देख रहे थे।

– हमेशा। अपनी सारी जिंदगी।

वे एक दूसरे के सामने थे। मिट्टी नम थी और कुछ कुछ सख्त। अपने नंगे जिस्मों में वे घुटनों पर झुके सतर्क निगाहों से एक दूसरे को तौल रहे थे। गुरु सदानंद फुर्ती से झपटे और उसे कंधों से जकड़ लिया। अगले ही क्षण वह मिट्टी में सना हुआ जमीन पर चित्त पड़ा था।

– यह लीजिये, पत्रकार महोदय, यह कुश्ती तो आप हार गये। गुरु सदानंद ने हंसते हुए कहा। दस गिनने तक आप न उठे तो . . . तो आपको मुझे अपना गुरु, अपना उस्ताद मानना होगा, पैर छूने होंगे। अपने अखाड़े का यही नियम था। दूर दूर से पह. लवान लड़ने आते थे और शागिर्द बनकर जाते थे। मैं गिनना शुरु करता हूं . . . एक।

वह जमीन पर पड़ा हुआ हांफ रहा था।

– दो . . . उठिये पत्रकार महोदय।

वह निढ़ाल पड़ा था। बदन में एक भी हरकत नहीं।

– तीन।
चार।

पांच।

छह . . .

उसने अपनी कोहनियां मोड़कर उठने की कोशिश की, लेकिन कमजोरी महसूस कर अपने को फिर ढीला छोड़ दिया और गहरी सांसें लेता रहा।

सात।

आठ।

नौ। दस। बस, खेल खत्म हुआ। तो . . . मानते हैं?

– मानता हूं।

गुरु सदानंद ने उसे हाथ पकड़ कर उठाया। अपने हाथों का सहारा देते हुए उसे धीरे–धीरे अखाड़े के किनारे तक लाये। घास पर बैठने में उसकी मदद की।

– कमाल है। उसने अपनी हंफनी पर काबू पाने की कोशिश करते हुए कहा। – इस उम्र में भी आप . . . । अभी तक कुछ भी नहीं भूले।

– इसमें कुछ भी ऐसा नहीं जिसे भूलना होता हो। यह तो आपका, मतलब आपके वजूद का हिस्सा बन जाता है। गुरु सदानंद ने अपनी आवाज में नरमी लाते हुए कहा। – इसी पर अपनी पूरी जिंदगी खर्च की है, घर गृहस्थी कुछ भी नहीं बसा. ई। यह व्यायामशाला उजड़ गयी है तो क्या, यह मेरा बदन . . . पुट्ठों को प्यार से सहलाते हुए उन्होंने कहा . . . बाकी है अभी, बहुत कुछ बचा है। लेकिन आपने कहा था, आप भी कुश्ती लड़ते रहे हैं, इसलिये मैंने कुछ अधिक जोर से . . . आपको चोट

तो नहीं लगी?
– नहीं, मैं ठीक हूं। उसने कहा। – आपने बताया कि अब यहां कोई नहीं आता।
– नहीं, और इस जगह पर अब बिल्डरों की निगाहें हैं। देखियेगा, किसी भी दिन यह व्यायामशाला गायब हो जायेगी, एक ऊंची बिल्डिंग यहां नजर आयेगी। आप अखबार में यह जरूर लिखना।

– आपके शागिर्द . . . वे भी नहीं आते?

– नहीं, अब कोई नहीं आता। नाल उतर जाये तो उसे चढ़वाने या कभी हड्डी जुड़वाने कोई आ जाये तो बात दूसरी है। अब कहां बचे कुश्ती के शौकीन और कदरदान। नई उम्र के लड़के लड़कियों को, उसे क्या कहते हैं, जिम न . . . हां जिम जाना अच्छा लगता है। आपका वह फोटोग्राफर अभी तक नहीं आया।

– वह आता ही होगा। वह यह जगह ढूंढ रहा होगा। अच्छा, सरकार की या प्रशासन की ओर से कभी कोई . . .

– उन्हें तो शायद इस जगह का पता भी नहीं होगा। उनसे पूछो, गुरु सदानंद को जानते हैं जो मशहूर पहलवान रह चुके हैं, किसी जमाने के हिंद केसरी, और उन्हीं के चेले थे जो उस वक्त हर स्टेट लेवल और नेशनल कंपीटीशन में . . .। बेवकूफों की तरह आपका मुंह देखते रहेंगे। अब देखिये, अखबार की ओर से भी आप अब आये हैं हालचाल लेने। इतने बरसों के बाद।

– मैं पहले यहां आ चुका हूं। उसने सिर झुकाकर एक धीमी आवाज में कहा।

– कब?

– बहुत पहले। अब से अठारह बरस पहले। उस दिन, जब आपने आखिरी कुश्ती लड़ी थी और फिर कुश्ती से सन्यास लिया था।

– आप आ चुके हैं? आप उस दिन यहां थे . . . आपने बताया नहीं। आपने देखा

था न, कितने लोग थे यहां, कितनी रोशनियां, कितना शोर। यह जगह खचाखच भरी थी, याद है न आपको। आप बहुत छोटे रहे होंगे। अकेले आये थे?

– नहीं, मैं अपने पिता के संग आया था।

– आपके पिता जो . . . जिन्हें पहलवानी का शौक था? आपने बताया था वे बहुत ताकतवर आदमी थे।

वह उठकर खड़ा हो गया। उसने घास के उस छोटे से मैदान का एक चक्कर लगाया, थोड़ी एक्सरसाइज की और बहुत देर तक ठंडी हवा के घूंट लेता रहा। उसने अपनी शक्ति को वापस आता महसूस किया। फिर गुरु सदानंद के करीब से गुजरता हुआ वह अखाड़े के बीच चला गया।

– हां, बहुत ताकतवर। बचपन में मुझे लगता था वही दुनिया का सबसे ताकतवर आदमी है।

– मगर पत्रकार महाशय, माफ कीजियेगा, उनकी ताकत आपको विरसे में नहीं मिली। एक हाथ लगाते ही चित्त हो गये।

– आइये, आपके साथ एक कुश्ती और हो जाये। उसने वहीं से कहा।

गुरु सदानंद ने उसकी ओर तरस खाती निगाहों से देखा।

– आप मजाक कर रहे हैं क्या ? कुश्ती एक गंभीर चीज है, मजाक नहीं। पहली में ही क्या हाल हुआ था, भूल गये? आइये, यहां आइये और बैठकर बातें कीजिये।

– सदानंद जी, एक कुश्ती और। उसने विनती जैसे स्वर में कहा।

– नहीं, पत्रकार जी, माफ करें। आप शायद भूल रहे हैं, आप मेरा इंटरव्यू लेने आये हैं, कुश्ती लड़ने नहीं। आइये इसे पूरा कर लेते हैं। रात हो चुकी है, ओस बरस रही

है। यहाँ रोशनी भी इतनी कम है। फिर मुझे घर भी जाना है, आपका वह फोटोग्राफर अब तक पता नहीं कहां . . .

– सदानंद जी, आप डरते हैं शायद कि पहली में किसी तरह इज्जत बचा ले गये मगर इस कुश्ती में कहीं . . .

गुरु सदानंद बिना कुछ कहे वहां के सूने अंधेरे में उसे आंख फाड़े देखते रहे। फिर वे धीरे–धीरे उठकर खड़े हुए और हौले, सधे कदमों से अखाड़े के भीतर चले गये। तारों की रोशनी तले ओस से भीगी ठंडी मिट्टी में सनी दो देहें गुत्थमगुत्था हो गयीं। वह जमीन से चिपका हुआ था, उसकी सांसें फूल रही थीं और पूरी ताकत से मिट्टी को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। गुरु सदानंद ने अपने शरीर का पूरा वजन उस पर डाल दिया। उसकी देह के नीचे धीरे–धीरे हाथ खिसकाते हुए गुरु सदानंद ने उसे कई बार उलटने की कोशिश की, मगर नाकाम रहे। वह सांसों को रोके हुए स्थिर और निस्पंद लेटा था, मिट्टी में मुंह छुपाये। आखिर गुरु सदानंद ने अपनी सांस रोकी और बजरंगबली को याद करने के साथ अपने शरीर की समूची ताकत समेटकर उसे एक झटके में उलट दिया। वे उठकर खड़े हो गये और वह उनके कदमों के पास चित्त पड़ा रहा।

– लीजिये, पत्रकार जी, आपकी यह तमन्ना भी पूरी हुई। मैं गिनना शुरु करता हूं. . . एक।

वह आंखें मूंदे एक लाश की तरह लेटा था।

– दो . . . उठने की कोशिश करो।
आहिस्ता उतर आये अंधेरे में जैसे उसका जिस्म घुल गया था, उस अंधेरे के एक हिस्से की तरह। उसकी सांसों की आवाज भी नदारद थी।

– तीन। चार। पांच । छह . . . आप ठीक हैं न?
गुरु सदानंद ने झुककर उसके शरीर को हौले से हिलाया।

– सात। आठ। नौ। दस। बस। चलिये, खेल खत्म हुआ। अब उठिये, शरीर को

झाड़िये और कपड़े पहन लीजिये। तबीयत खराब हो सकती है। इंटरव्यू अभी बाकी है या . . .
उसने आंखें खोलीं और अपना बेजान हाथ उनकी ओर बढ़ाया। उन्होंने उसे खींच कर खड़ा किया और बांहों से सहारा देते, धीरे–धीरे धकेलते हुए, किनारे की तरफ ले जाने लगे। वह घास पर बिखरी पत्तियों पर लेट गया और गुरु सदानंद कपड़ों के ढेर में से उसकी कमीज उठाकर हवा करने लगे।

– आप बहुत थक गये होंगे। आप चाहें तो बाकी इंटरव्यू हम कल . . . – नहीं, मैं ठीक हूं। उसने बहुत धीमी, थकी आवाज में कहा।

– जब आप यहां पहली बार बाये थे, अठारह बरस पहले, उस समय से तुलना करके आपको बहुत अजीब लग रहा होगा न? उस वक्त की रोशनियां और अब यह उजाड़, सुनसान जगह। मगर कुश्ती का शौक होते हुए भी आप दुबारा कभी यहां नहीं आये। गुरु सदानंद ने कहा।

– दोबारा आया हूं न। आज।

– आज, हां। लेकिन इतने वर्षों के बाद। पूरे अठारह बरस।

– मुझे एक बहुत लंबे रास्ते से आना पड़ा। उसने कहा। – एक बहुत लंबा चक्कर लगाकर। पूरी दुनिया का चक्कर।

– पूरी दुनिया का। मैं समझा नहीं।

– हां, पूरी दुनिया। लंदन, पेरिस, न्यूयार्क। और भी न जाने कौन–कौन से शहर।
– आपको अपने काम के सिलसिले में वहां जाना पड़ता होगा। पत्रकारों के मजे हैं। आपने क्या नाम बताया था अपने अखबार का।

वह जमीन पर चुपचाप औंधा लेटा रहा। गुरु सदानंद ने अंधेरे में उसके शरीर को हल्के से छुआ, फिर पीठ पर सहलाया। वह निश्चेष्ट पड़ा रहा, उसके भीतर एक घनी

थकान थी, वैसी थकान जो बरसों बूंद–बूंद जमा होती रहती है। अंधकार की चौकसी करते हुए गुरु सदानंद चारों तरफ देखते रहे। अब हवा कुछ तेज चलने लगी थी। गुरु सदानंद ने गेट के पार किसी आहट को कान लगाकर सुना, माथे से पसीना पोंछते उठ खड़े हुए, गेट की तरफ चलने लगे। वह आहट कुछ करीब आई, फिर दूर चली गयी। इतनी सी देर में शताब्दियों के बराबर एक निरवधि समय बीत गया।

वह कोहनियों पर शरीर का पूरा वजन देते हुए हौले से उठा। पहले उसने आकाश में देखा, तारों का अमित विस्तार, और फिर अंधेरे में चारों ओर। गुरु सदानंद आसपास कहीं नहीं थे। कहां चले गये, उसने सोचा और आंखें गड़ाकर अंधेरे में देखने की कोशिश की। गुरु सदानंद गेट की दिशा में दूर से आते दिखाई दिये। वह उठकर खड़ा हो गया। वह अब अपने को सुस्थिर महसूस कर रहा था, और भीतर कहीं बहुत शांत भी।

– सदानन्द जी, आपसे एक कुश्ती और लड़नी है। उनके पास आ जाने पर उसने कहा।

– एक और कुश्ती? गुरु सदानंद उसे हैरत और अविश्वास से देखते रहे।

– हां, एक और। उसने कहा।

– यह इंटरव्यू है या कोई मजाक? आपने क्या नाम बताया था अपने अखबार का, मुझे पता दीजिये, मैं शिकायत करुंगा, किसने आपको पत्रकार बनाया। ये कोई तरीका है? और आपका वह फोटोग्राफर अभी तक क्यों नहीं आया?

– माफ करना सदानंद जी, मैं कोई पत्रकार नहीं। और कोई फोटोग्राफर नहीं आने वाला है। उसने एक थकी आवाज में कहा।

– पत्रकार नहीं तो फिर कौन हैं? और मेरे पास क्यों आये हैं?

– मनस्तत्वविद हूं एक।

– मनस . . .मनस. . .क्या कहा आपने ? मैं समझा नहीं।

– साइकलॉजी का प्रोफेसर हूं। पेरिस की एक यूनिवर्सिटी में पढ़ाता हूं। शरीर से नहीं, मेरा नाता इंसान के मन से है। मगर अब लगता है, जो शरीर और आत्मा को इस तरह बांटते हैं, कुछ भी नहीं जानते, न शरीर के बारे में, न आत्मा के। पह. लवान के पास भी एक मन होता है और मनस्तत्वविद् के पास एक षरीर। दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में लेक्चर देने जाता हूं। वे मुझे अपने समय का सबसे बड़ा मनस्तत्वविद् कहते हैं। मगर अब उस देश से और अपनी पत्नी से नाता तोड़ कर वापस आ गया हूं। आज ही . . .

– आप पेरिस से आये हैं, और सीधे यहां मेरे पास। क्यों, किस इरादे से?

– आपसे कुश्ती लड़ने।

गुरु सदानंद अवाक् उसे देखते रहे।

– आइये, एक कुश्ती और हो जाये। यह आखिरी होगी, बस, इसके बाद नहीं।

– नहीं, मुझे माफ करें, मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं।

– आइये, एक कुश्ती और।

– नहीं, बस हो चुका।

अपनी गदा को घसीटते हुए गुरु सदानंद कोने की कोठरी की ओर जाने लगे।
– सदानंद . . . उसने पीछे से चिल्लाकर कहा। – किसी गलतफहमी में मत रहना। रहा होगा कभी अपने समय का सबसे बड़ा पहलवान, मगर अब कुछ नहीं बचा तेरे भीतर।

अपनी जगह पर ठिठक कर खड़े हो गये गुरु सदानंद।

– तेरी हड्डियों को जंग लग चुका है। पहलवान कहता है अपने को? तेरी काया . . . यह एक छाया है बस, किसी बहुत पुराने समय की। खाली हो चुका तू। खोखला। खल्लास।

गुरु सदानंद के हाथों की गदा जमीन पर गिर गयी। वे पलटे और भागते हुए आये। उन्होंने अखाड़े के एक किनारे पर उसे दबोच लिया। उसने फिर पहले की तरह मिट्टी में मुंह छुपा लिया।

– कौन है तू? और क्यों आया है, क्या चाहता है? अपनी हांफती सांसों के बीच पसीने में तरबतर गुरु सदानंद ने चिल्लाकर कहा।

– मैं पहले आता, लेकिन मां हमेशा रोकती रही। उसके मरने के बाद ही आ पाया। दस दिन पहले . . .

– क्या हुआ था दस दिन पहले?

– कुछ भी नहीं। मां ने अपने दिल को बस जरा सा दबाया था और कहा था, यहां . . .इस जगह। मेरी पत्नी बदहवास हो गयी थी और टेलीफोन की ओर लपकी थी। पलक झपकते ही सब कुछ खत्म हो गया था।

– फिर?

– मैं फर्श पर बैठ गया था। मेरे भीतर एक घनी शांति थी। मेरे लिये काफी था इतना कि वह शांति से मरी, बिना तकलीफ के। अठारह बरस पहले मेरा बाप जिस तरह मरा था, उस तरह नहीं। मेरी पत्नी जानीन, उसी मुल्क की है वो, मेरे करीब बैठ गयी थी। उसने मेरे हाथों को अपने हाथों में लेने की कोशिश की थी, लेकिन मैंने धीरे से अपने हाथ छुडा लिये थे। मेरे चेहरे की ओर देखते हुए उसने कहा था – अब ? और तब मैंने कहा था, अब दस्तखत कर दूंगा। वह चुपचाप रोने लगी थी।

– किस बात के दस्तखत?

– तलाक के कागजों पर, और क्या। वह मेरी विद्वता पर मर मिटी थी, मगर शादी के बाद जब उसे मेरे खयालों के कुनबे में दाखिल होना पड़ा तो . . । मेरे अतीत से घिन आती थी उसे, और मेरे रातों में बड़बड़ाने से भी। वह कई सालों से अलग होना चाहती थी। इसीलिये हमने परिवार भी नहीं बढ़ाया। मैंने ही उससे विनती की थी कि मां के रहते . . .

तारों की रोशनी तले मिट्टी और पसीने में लथपथ, एक दूसरे में गुत्थमगुत्था दो कसमसाते हुए नंगे शरीर।

– यहां क्यों आया तू?

– ये हर बेटे को करना होता है न। हड्डियां और राख गंगा में बहानी होती हैं। वही लिये आ रहा हूं पांच हजार कि.मी. दूर से। देख वह रहा बैग जिसमें मेरी मां का चूरा है। वही वापस ला पाया उस मुल्क से, और साथ में अपने बाप का चाकू।

– चाकू?

– चाकू नहीं, छुरा। वह वहां मेरे घर की दीवार पर टंगा था। उसे मेरी मां जब भी देखती थी, उसकी आंख और मुंह में एक साथ पानी आ जाता था। उसी छुरे से मारता था मेरा बाप।

– मारता था? क्या? किसे?

– उसने कभी सूअर मारने के लिये के लिये उसके मुंह में गंधक पोटाश का निवाला नहीं दिया, और न कभी जाल में लपेटकर मारा। इन तरीकों से उसे नफरत थी। वह खुले मैदान में छुरे से मारता था, लहूलुहान हो जाता था। इतना ताकतवर था वो। तड़प–तडप कर सूअर दम तोड़ता था और उसके बाद खून में तरबतर मेरा थका–मांदा बाप पूरी दोपहर सोया रहता था। छुरा न हो तो लाठी पत्थर हथौड़ा कुल्हाड़ा कुछ भी। यही तो था पुश्तैनी काम। मुझे नहीं सिखाया, और न कभी छुरा छूने दिया, मैं पढ़ने में बहुत अच्छा था न। इतनी ताकत थी उसमें और ऐसे उसके

पंजे कि एक ही बार में बधिया कर दे। सूअर की चर्बी, गोश्त और कड़ी मेहनत से उसने अपना बदन बनाया था, धूप में चमकता था। उसकी तमन्ना पहलवान बनने की थी, मैंने बताया था न। गुंडे भी उसे सलाम करते थे, दूर से गुजर जाते थे। मगर अठारह साल पहले, मैंने देखा था, वह पस्त मुंह कमरे में टहल रहा था। डरा हुआ था और खिड़की के बाहर दूर तक इस तरह झांक रहा था जैसे इस दुनिया को आखिरी बार देखता हो। काला तो था मगर उस दिन वह इतना काला लग रहा था, जैसे. . . जैसे . . .घनी रात का रंग होता है। – खिड़की के बाहर . . ? क्या? – लोग ही लोग, तिल रखने की जगह नहीं। जैसे पूरा शहर उमड़ आया हो। बन्दनवार और जगमगाती रोशनियां। बाजों और नगाड़ों का शोर। उस दिन . . . उस दिन महान पहलवान गुरु सदानंद की आखिरी कुश्ती थी। वहां वह जो दीवार है, उस वक्त नहीं थी। उसके पीछे ही तो था अपना घर और बस्ती। अब वो भी उजड़ गयी।

गुरु सदानंद सांस रोके सुन रहे थे।

– जब हो चुकी आखिरी कुश्ती तो लाउडस्पीकर पर ऐलान किया गया, कोई और हो तो सामने आये। सार्वजनिक चुनौती, कि कोई भी माई का लाल आये, गुरु सदानंद कुश्ती लड़ेंगे। भीड़ में से निकलकर मेरा बाप सामने आया था। वह धीमे, अनिश्चित कदमों से आगे बढ़ा था। मैं उसके पीछे था। गुरु जी के पास पहुंचकर वह उनके पैर छूने के लिये झुका था। गुरु जी ने उसकी ओर देखा था और उसे पहचान कर कहा था . . .

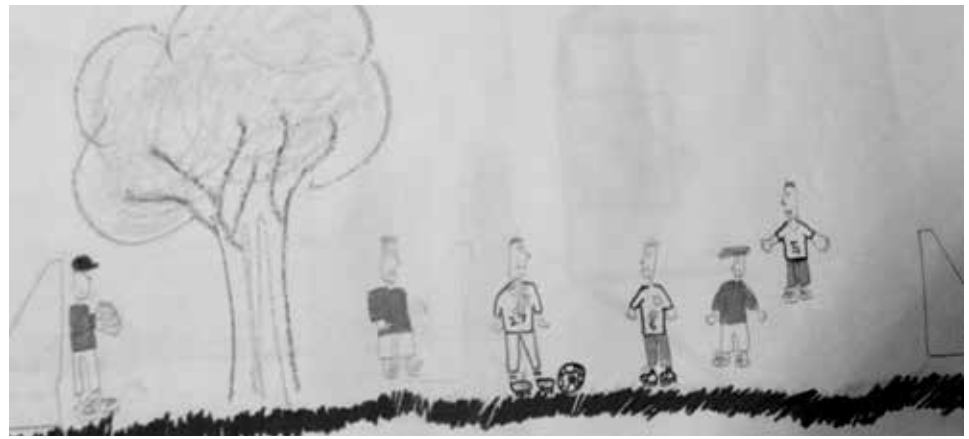

– क्या कहा था? गुरु सदानंद ने कुछ याद करने की कोशिश करते हुए कहा।

– कहा था, अब ये दिन आ गये। अब तो भंगी, चूहड़े और चमार भी कुश्ती लड़ने लगे। और फिर कहा था . . .

– क्या? क्या कहा था?

– कहा था, चल हट, मैं भंगी से लडूंगा आखिरी कुश्ती?
गुरु सदानंद का बदन बर्फ की तरह ठंडा पड़ गया।

– दुनिया भर में लेक्चर देने जाता हूं। वे कहते हैं मुझे अपने समय का सबसे बड़ा मनस्तत्वविद्। वे कहते हैं मैं ही खोज कर निकालूंगा आदमी के मन और आत्मा के वे सारे रहस्य जो अभी तक जाने नहीं गये। रोज रात को अपनी नींद में, सपनों में एक कुष्ती लड़ता हूं, बिस्तर में पसीने से तरबतर होता हूं। कितनी किताबें लिख डालीं मैंने, कितने पर्चे, लेकिन वह घाव . . .। मेरा बाप, जिसे मैं दुनिया का सबसे ताकतवर आदमी समझता था, कितना कमजोर निकला, और उसका वह छुरा, कितना मामूली। अपने समय के उस महान पहलवान के पास वह कैसी कटार थी, और कैसी उसकी धार . . . आज तक बहता है खून।

गुरु सदानंद अखाड़े में चित्त पड़े थे।

– मैं गिनना शुरु करता हूं . . . उसने कहा। एक। दो। तीन। चार . . . मगर भीतर से उठती आती रुलाई को वह बस नौ तक संभाल पाया। नहीं कह सका वह दस, बस और लो खेल खत्म हुआ। अचानक उठा और अपने कपड़े उठाकर मैदान के अंधेरे सुनसान कोने में चला गया। सदानंद दूर से आती उसकी हिचकियों की आवाज सुनते हुए मिट्टी में लेटे रहे। थोड़ी देर के बाद वे उठे और अपनी गदा को घसीटते हुए खामोश, थके कदमों से कोने की कोठरी की तरफ चलने लगे।

.....

म्यूजिकल चेयर

पद्मा राय

लाल ईंटों से बनी इमारत सामने दिखाई दे रही है। मुख्य द्वार के गेट से अंदर प्रवेश करते ही– एक कतार में थोड़े–थोड़े दूर पर खड़ी पीले रंगों की बसों पर लिखी इबारत पर यूं ही नजर चली गयी। बड़े–बड़े एवं साफ–सुथरे अक्षरों से उन पर लिखा था–

''चेतावनी''

''विकलांग बच्चों की बस''

''कृपया दूरी बनाए रखें''

यहां आने वाले बच्चों मे से ज्यादातर के चेहरे,मेरे दिमाग में किसी फिल्मी रील की तरह घूम गये। बहुत ज्यादा सोचने का समय नहीं था। रिसेप्शन पर निवाड से बंधा पंकज हाथ में कलम लेकर रजिस्टर में कुछ लिख रहा था। मुझे देखकर हमेशा की तरह मुस्कराया ।

''गुड मार्निंग, दीदी।''

''गुड मार्निंग पंकज।'' मुस्कराकर उसका जवाब देते हुए मैं आगे बढ़ ली।

कुछ देर तक उसका मुस्कराता चेहरा भी मेरे साथ–साथ चलता रहा। उस समय पंकज क्या लिख रहा होगा? शायद अपना सिग्नेचर कर रहा हो। यह भी कोई बात हुई? मैं भी क्या फालतू की बातों में अपने दिमाग को उलझाये रहती हूं। मैं पंकज को छोड़कर, उससे आगे निकल गयी।

रास्ते में कई बच्चे और मिले। कुछ टीचर्स, हेल्पर्स एवं वॉलटिंयर भी आते–जाते

दिखाई दिये। इस समय किसी को फुर्सत नहीं थी। हां परिचित चेहरों को देखकर फॉर्मेलिटीवश मुस्कराते जरूर थे। कुछ बच्चे अपने हाथों से अपने व्हील चेयर के पहिये को घुमाते हुये क्लासरूम की तरफ बढ़ रहे थे तो कुछ को मदद की जरूरत पड़ रही थी। कइयों के हाथ में क्वाड्रीपैड्स थे जो उन्हें आगे बढ़ने मे सहायता कर रहे थे तो कुछ गेटर्स के सहारे धीरे–धीरे ही सही अपने गन्तव्य की ओर बढ़ रहे थे। यह समय ऐसा था जिस समय ज्यादातर लोग यहां चल रहे थे। उनमें एक मैं भी थी। सब जल्दी में थे। किसी को किसी से बात करने की फुर्सत नहीं थी। खडड़–खडड़, खट्,–खट् जैसी आवाजों, जो या तो व्हील चेयर्स की थीं या फिर बैसाखियों की– को ही सुना जा सकता था। इस समय इसके अलावा और किसी दूसरी आवाज को सुनना जरा मुश्किल था।

जल्दी थी मुझे भी। मेरे कदम अपने आप तेज हो गये।

आज 'ग्रास मोटर सेशन' है। क्लास रूम के ठीक बगल में, इस इमारत के सबसे पीछे वाले कमरे में या यूं कहिए हाल में ये सेशन चलता है। फिजिओथैरेपी भी इसी कमरे में होती है। बारी–बारी से एक–एक बच्चे को वहां लाया जाता है और उसकी जरूरत के मुताबिक उसकी थैरेपी होती है। रास्ते में पड़ने वाले ज्यादातर क्लासरूम्स में करीब–करीब, सभी बच्चे पहुंच गये थे या बस पहुंचने वाले थे।

'ग्रास मोटर सेशन' जिस कमरे में होता है, अच्छा खासा बड़ा है। बीस बाई पचीस का जरूर होगा। ज्यादा बड़ा भी हो सकता है। अगला एक घंटा खासा मशक्कत वाला तो है लेकिन मनोरंजक है।

वहां लगभग सारे बच्चे, टीचर्स, हेल्पर्स एवम् वॉलेंटियर्स पहले से मौजूद थे। कमरे में पहुंची। बायीं तरफ मौजूद एक बड़ी सी मेज पर अपना पर्स रख दिया। देखा उस पर हमेषा की तरह ढेरों चीजें पहले से रखी हुयीं थीं। बच्चों के नी पैड्स, गेटर्स, लंच बाक्स, पानी की बोतलें और कुछ दुपट्टे वहां थे। ये सब चीजें तो वहां हमेशा ही रखी हुयी दिखाई दे जाती थी किन्तु आज एक नया सामान भी था जो पहले मैंने कभी नहीं देखा था। फिलिप्स का एक 'म्यूजिक सिस्टम'–जिसका प्लग मेज के पीछे दीवाल पर लगे स्विच बोर्ड में लगा हुआ था– की मौजूदगी से मुझे आश्चर्य हुआ।

''वहां इसका क्या काम हो सकता है?''

शायद ग्रास मोटर सेशन के दौरान इसकी जरूरत पड़े। लेकिन किसी से कुछ पूछने की कोशिश नहीं की। पर्स रखकर मुड़ी तब माथे पर पसीने की बूंदों का अहसास हुआ। गर्मी थी। पंखा चलाने की याद किसी को नहीं आयी थी। पट्–पट्–पट्, एक साथ सभी पंखे चलने लगे। अब ठीक है। पंखे की घरर, घरर में दूसरी सभी आवाजें मद्धिम पड़ने लगीं।

नेहा अभी ब्रेकफास्ट कर रही है। शीतल ने उसे सहारा देकर अपने साथ बैठाया है। केला छील कर नेहा को खिलाने का काम आज उसने अपने जिम्मे ले लिया है। नेहा खा रही है। उसका मुंह आहिस्ता–आहिस्ता चल रहा है। मैंने उसके सामने पहुंचकर उसकी आंखों मे झांकने की कोशिश की। उसने मुझे देख लिया था। किसी परिचित चेहरे को देखते ही उसकी आंखों में दुनिया भर का उजाला आ जाता है। चमकीली आंखों की पुतलियों की चमक और बढ़ जाती है।

प्रार्थना अभी–अभी समाप्त हुयी है। आज मोमबत्ती साहिल ने बुझायी है। मुझे वहां देखकर साहिल ने ऊंची आवाज में कहा–''दीदी, गुड मार्निंग। पता है मैंने आज मोमबत्ती बुझायी है।'' आज दिन भर मिलने वालों से साहिल और कुछ शेयर करे न करे यह बात जरूर शेयर करेगा।

इस बड़े कमरे की पीछे की दीवार से सटाकर दो बड़े–बड़े गद्दे बिछे हैं। उन पर बच्चे चुपचाप बैठे हैं और हमेशा की तरह खेल आरम्भ होने का इंतजार कर रहे हैं। वे बार–बार घड़ी देख रहें हैं। इंतजार लम्बा खिंच रहा है। आखिर कितनी देर इस तरह से मुंह बंद करके बैठा जायेगा इनसे ? धैर्य थोड़ा कम जो है उनमें। अनायास मेरी निगाहें भी घड़ी की तरफ घूम गयीं।

पौने दस बजने को हैं यानि कि बस अब खेल शुरू होने ही वाला है। दाहिनी तरफ की दीवार पर टंगी घड़ी बिना रुके टिक–टिक करती हुयी अपने काम में मुस्तैद। पृथ्वी और पी कुमार एक–एक करके कुर्सियां कमरे में लाकर बीचों–बीच एक पंक्ति में लगाने में व्यस्त।

घड़ी के ठीक नीचे एक खूबसूरत घर का चित्र। पीछे की दीवार पर कई तरह के मोटीवेशन चार्ट्स। स्पैस्टिक बच्चों के लिए अनेकों हिदायतों से भरे हुए ढेरों चार्ट्स से लगभग सभी दीवारें भरी हुयीं हैं। उनमें कहीं कैटर पिलर्स बने हैं तो कहीं उम्र के लिहाज से डवलपमेन्टल स्टेजेस के बारे में बताया गया है।

बांयीं तरफ एक खूबसूरत चार्ट टंगा है जिसमें गेट ट्रेनिंग के बारे मे बड़े विस्तार से समझाया गया है। डिजाइनर का नाम 'मंजू' है।

कुर्सियां लगायी जा चुकी हैं। पी कुमार को मौका मिल गया, खिसक लिया। अब कम–से–कम आधे घंटा तो लगेगा ही उसे लौटने में और इस बीच पृथ्वी उसके हिस्से का काम बिना किसी शिकवे शिकायत के करता जायेगा, लगातार। ऐसे ही चलता है हमेशा। पी कुमार कुछ खास लोगों की बातों पर ही तवज्जो देता हुआ दिखायी देता है। ज्यादातर लोगों की बातों को कोई न कोई बहाना बनकर टाल जाता है। बहाना ऐसा बनाता है कि भी विश्वास हो जाता है। लेकिन है नम्बर एक का आलसी।

'ग्रास मोटर सेशन' एक तरह का गेम पीरिएड है। इस दौरान इन बच्चों को कोई–न–कोई ऐसा गेम खिलाया जाता है जिससे उनके शरीर की एक्सरसाइज भी होती रहती है। इस सेशन की इंचार्ज है 'अमित'। उम्र यही कोई छब्बीस वर्ष, अपनी उम्र से कुछ ज्यादा शोख, हर दिन एक नये अंदाज में, हमेशा ऐक्शन से लबालब दिखायी देती। अपनी तरफ सबको आकर्षित करती हुयी जिन्दगी से भरपूर अमित दी बच्चों की चहेती और बच्चों में ही मगन।

एक घंटे का यह समय है तो इन बच्चों का ग्रास मोटर सेशन किन्तु हम बड़े भी इसमें उसी दिलचस्पी से भाग लेतें हैं जिस तरह ये बच्चे। उस समय दिमाग से यह गायब हो जाता है कि अपनी उम्र अब इस तरह के क्रिया–कलापों को झेलने में उतनी सक्षम नहीं है। जब थोड़ी देर झुक कर खड़े होने के बाद सीधा खड़े होने में दो तीन मिनट लग जाते हैं, तब उम्र का अहसास जोर मारने लगता है। जीवन के ढलान पर खड़े होने के बावजूद मन तो जैसे ठहरा हुआ है उसी पुरानी अवस्था में–सच्चाई को समझने मे अभी वक्त लगेगा।

आज कौन सा गेम खेलना है? निर्णय अमित को करना है। खेल जल्दी आरम्भ होना चाहिए। कभी घड़ी पर टंगती निगाहें तो कभी अमित पर। वक्त की पाबंद हैं अमित दी। अब ग्रास मोटर सेशन आरम्भ होने को है, सबको मालूम है। अमित दी की ओर सबकी उत्सुकता भरी आंखें।

उन्होने निराश नहीं किया। सबको बारी–बारी देखा। देर हो गयी है आज। कुछ देर तक चुपचाप खड़े होकर सबकी उत्सुकता को बढ़ावा देती हुयी अमित के अंत में होंठ हिले।

''आज हम एक नया खेल खलेंगे।''

सब एकाग्रचित्त होकर सुन रहें हैं। तानिश की आंखों की पुतलियां नाचती हुयी अमित दी के चेहरे पर अटक सी गयीं। अपनी भंवें हिलाते हुए इशारे से ही उसने पूछना चाहा–

''कौन सा गेम दीदी?'' लेकिन किसी ने भी नहीं सुना। अमित ने भी नहीं।

''आज हम 'म्यूजिकल चेयर' नाम का गेम खेलेंगे।''

अप्रत्याशित था। एक दम अनूठा चयन। आज का यह खेल इनको एक अनोखा अनुभव देने वाला है। अभी तक इन्होंने यह खेल दूसरों को ही खेलते हुये देखा था। अब उनकी बारी आयी है। मजा आयेगा। तरह–तरह के भाव उनके चेहरों पर अपना रंग दिखाने लगे। इशिता विनयना की तरफ देख कर हंस रही थी, तो साहिल अपने बगल में बैठे जतिन को यह समझाने में लगा हुआ था कि वह इस खेल के बारे में सब कुछ अच्छी तरह जानता है। मीनू अपने आपको संभालने में नाकाम अपनी खुशी का इजहार बखूबी कर रही थी। खुष थे सभी। उनकी हरकतें इस बात की गवाह थीं। कुछ आंखों से तो कुछ धीमे स्वर में इस खेल के विषय में थोड़ी बहुत जो भी जानकारी उनके पास उपलब्ध थी एक दूसरे को बताने लगे। कमरे के अंदर इन सबकी मिली–जुली आवाजें गड्ड–मड्ड हो गयीं थीं। कुछ भी साफ सुनाई नहीं दे रहा था। उत्सुकता अपने चरम पर थी।

वहां कुल ग्यारह बच्चे मौजूद थे। जिसमें से एक–नेहा खेलने में असमर्थ थी। दस कुर्सियां कमरे के बीचोंबीच एक सीध में रख दी गयीं। नेहा अपनी जगह पर बैठ कर खेलते हुए बच्चों को देखेगी। कुल दस बच्चे खेलेंगे। दीपक, इशिता, सनी, विनयना, सुनील, सोनी, सुनील वर्मा, जतिन, क्षितिज, तानिश, और मीनू। बड़े हैं कुल सात। चार टीचर्स, एक वॉलिंटीयर यानि कि मैं और दो हेल्पर्स। वैसे पी कुमार तो अभी तक लौटा नहीं है। वह बाहर गया है। काफी देर हो चुकी है उसे गये हुए क्या पता खेल समाप्त होने तक लौटेगा भी या नहीं? मुझे इसमें सन्देह है।

नेहा खेल नहीं सकती। इसलिये गद्दे पर उठंग होकर शीतल के सहारे बैठी हुयी है। सब खेल की तैयारी में जुट गये। छटपटाती नजरों से नेहा ने हम लोगों को देखा, कुछ जानना चाह रही थी। उन बड़ी–बड़ी आंखों में हलचल साफ दिखायी दे रही थी। कौन कहता है, नेहा बोल नहीं सकती। मैं देख रही थी कि उसके होंठ थरथरा रहे थे जैसे कुछ कह रहे हों। मैं सुन पा रही थी नेहा की आवाज, मेरे अलावा दूसरे किसी ने नहीं सुना। नेहा भी खेल का हिस्सा बनना चाह रही थी पर .....उसकी आंखें भर आयीं हैं। लेकिन उस छोटी सी लड़की को अच्छी तरह से यह मालूम था कि वह इस खेल का आनन्द, वह सिर्फ सब बच्चों को खेलते हुए देखकर ही उठा सकती है। मजबूरन उसने अब अपने मन पर काबू करीब–करीब कर ही लिया है, किन्तु उसकी बेचैनी कभी–कभार उसके चेहरे से जाहिर हो जा रही है। अभी अपने मन के भावों को छिपाना उसे नहीं आया है।

मैने अपनी आंखें उसकी तरफ से हटा लीं क्योंकि मुझे लगने लगा था कि अगर मैं कुछ देर और उसे इसी तरह एक लगातार देखती रहती तो जो आंसू उसकी पलकों पर अटके थे उन्हें बाहर आने में ज्यादा वक्त नहीं लगेगा।

सायास मैंने अपनी आंखों को नेहा की तरफ से हटाया और कहीं और देखने लगी। उसके नजदीक जाकर कुछ देर बैठने की भी इच्छा मन में उठने लगी, किन्तु नहीं। समय कम है और खेल शुरू होने वाला है।

बच्चों में कुलबुलाहट बढ़ने लगी। खेल आरम्भ होने तक जाने क्या हाल होगा? एक दूसरे की आवाज सुनना भी मुश्किल था। खेल जल्दी शुरू हो जाये तब इन्हें

संभालना शायद आसान हो जायेगा। लेकिन अमित की हिदायतें हैं कि समाप्त होने का नाम नहीं ले रहीं हैं। एक के बाद दूसरी हिदायत लगातार। अपने अनोखे अंदाज में कुछ कहे बिना भी हरदम बोलती हुयी आंखों के साथ करीब–करीब आदेश देती हुयी उसकी आवाज ने सबको थोड़ी देर के लिए शांत होने के लिए मजबूर कर दिया। अकेले अमित की आवाज कमरे में सुनायी पड़ रही थी। ध्यानपूर्वक सब उसे सुन रहे थे। खेल में अगर जीतना था तो ध्यान से सुनना जरूरी था।

''तानिश के अलावा सभी बच्चों के पैरों मे आप लोग नी पैड्स बांध दीजिए।'' अंजना से संबोधित था यह वाक्य।

''तानिश को अब नी पैड्स की जरूरत नहीं है। वह अब गेटर्स के सहारे चलने लगा है। क्यों तानिश ठीक कह रहीं हूं न?''

हमेशा से वाचाल तानिश आश्चर्य शरमाने लगा। उसके हाव–भाव देखने लायक थे। मजा आ गया। उसने कहा एक शब्द नहीं लेकिन अपनी बैठने की जगह बार–बार बदलते हुए अमित दी से सहमत है, सिर हिलाकर जता जरूर दिया। होंठ गोल करके सीटी बजाने की कोशिश शुरू कर दी उसने। चार–छह बार सू–सू से मिलती–जुलती आवाज उसके मुंह से निकली लेकिन सीटी नहीं बज पायी। अब बाद में कभी सीटी बजाने की प्रैक्टिस की जायेगी।

''मीनू और दीपक हेलमेट भी पहनेंगे।'' अमित ने इन्सट्रक्शन्स दिये।

अंजना और शीतल, दोनों के लिये दिये गये थे ये इन्सट्रक्शन। दो मिनट के अंदर ही वे दोनों हेलमेट पहने और नी पैड्स बांधे सामने तैयार दिखायी दिये। कुर्सियों तक पहुंचने की बेताबी बढ़ती जा रही थी। मैं अपनी बारी की उम्मीद करते हुए इन्तजार कर रही थी, किन्तु अब लगा कि मुझे इस तरह के किसी काम के लिये नहीं कहा जायेगा। मैं वॉलिंटियर थी शायद, इसलिए। वॉलिंटियर्स के लिए कुछ खास काम ही होते होंगे। या फिर किसी और कारण से? क्या पता।

''तानिश को छोड़कर सभी बच्चे घुटनों के बल कुर्सी तक पहुंच जायें।''

''तानिश, तुम अपने आप चलकर कुर्सी के पास पहुंचो।'' तानिश की अपने तरफ देखते हुए अमित ने देखा तो मुस्कराकर कर कहा। इतना सुनते ही तानिश जितना हो सकता था उतना तेज चलते हुए कुर्सी की तरफ बढ़ा।

अपने शरीर का पूरा बोझ हाथों पर, और घुटनों के बल लगभग दौड़ते हुए सभी ने एक–एक कुर्सी हथिया ली। तानिश भी पीछे नहीं रहा। लहराकर चलते हुए कमरे के बीच पहुंचा और एक कुर्सी का पीछे का हिस्सा पकड़कर खड़ा हो गया। इसके बाद आगे क्या करना है, अभी तक अमित दी ने नहीं बताया है। ताली बजाकर सबका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करते हुए अमित ने कहा–

''सब ध्यान देकर सुनो नहीं तो खेलते समय तुम लोगों को परेशानी होगी। तुम्हारा पूरा ध्यान म्यूजिक पर होना चाहिए। म्यूजिक आरम्भ होते ही तुम लोग अपनी–अपनी कुर्सियों से उठकर उनके चारों तरफ चलना शुरू कर दोगे। तब तक चलते रहना होगा जब तक म्यूजिक बंद न कर दिया जाये। म्यूजिक बंद होने के साथ ही हर बच्चे की ये कोशिश होनी चाहिए कि वह किसी एक कुर्सी तक पहुंच कर उस पर बैठ जाये। बैठने के लिए जिसको कुर्सी नहीं मिलेगी वह अपने आप गेम से बाहर हो जाएगा।'' कहते–कहते अमित ने थोड़ी देर के लिए चुप होकर सबको देखा और फिर कहा–

''एक बात पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा कि कोई भी बच्चा दौड़ते–दौड़ते आधे रास्ते से उल्टा मुड़कर नहीं दौड़ेगा। ऐसा करना खेल के नियम के विरुद्ध है। जो भी ऐसा करता हुआ पाया जाएगा वह बच्चा तभी खेल से बाहर कर दिया जायेगा। खेल इसी तरह आगे बढ़ेगा और तब तक चलता रहेगा जब तक कि केवल एक कुर्सी नहीं बच जाती। उस कुर्सी पर बैठने वाले बच्चे को ही विजेता कहा जाएगा।''

अमित ने अपनी बात पूरी कर दी थी किन्तु अभी भी सारे बच्चे शांत बैठे थे और एकटक अमित को देख रहे थे।

''तुम लोगों को मेरी बात समझ मे आयी या नहीं?''

बच्चे जैसे नींद से जागे। बोले–सारे के सारे, करीब–करीब एक साथ–

''आ गयी दीदी।''

''तब क्या समझूं, सब तैयार हैं?''

''हां जी, तैयार हैं।'' जल्दी–जल्दी अपनी गोल–गोल आंखें झपकाते हुए तानिश ने कहा।

उत्सुकता अपने चरम पर थी। अब तक नेहा की उदासी गायब हो चुकी थी। आश्चर्य था उसकी आंखों में। वह खेल का हिस्सा नहीं थी तो क्या, देख तो सकती है। खेल देखने में भी, कम आनन्द नहीं है। नेहा को देखकर यह बात आसानी से समझी जा सकती है।

सावधान हैं सब। एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं और अपने आगे वाली कुर्सी पर निगाहें हैं। तैयारी पूरी है सबकी। सबकी निगाह कुर्सियों पर टिकी है।

स्विच बोर्ड की तरफ अनिता का हाथ बढ़ा और म्यूजिक चालू हो गया। बच्चे चलने लगें हैं। वे सब चल रहें हैं, पैरों से नहीं 'घुटनों' से। एक भजन की पंक्तियां दिमाग में कौंध गयीं।

''ठुमक चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनियां।''

''घुटनों से चलते हुए रामचन्द्र।'' गोस्वामी तुलसी दास ने जिस समय इस गीत की रचना की होगी तब उनके भगवान रामचन्द्र की उम्र साल डेढ़ साल से ज्यादा तो नहीं ही रही होगी। लेकिन हमारे इन अनेकों रामचन्द्रों की उम्र चार, पांच, ...सात या कुछ ऊपर होगी। उम्र से फर्क भी क्या पडता है। ये हमारे ढेरों रामचन्द्र तुलसी के एक रामचन्द्र से किसी तरह कमतर नहीं।

उधर तानिश अपने दोनों हाथों को सामने लाकर, दसों अंगुलियों को एक दूसरे में जकड़े, गेटर्स बंधे पैरों से लडखड़ाता हुआ दौड़ में सबसे आगे रहने की हरसंभव कोशिश के बावजूद बीच–बीच में पीछे मुड़कर देखना नहीं चूकता। घुटनों से चलने

वाले बच्चे उससे तेज दौड़ रहें हैं। कम मुसीबत नहीं है। हल्का–फुल्का शरीर होता तब ठीक होता। भारी भरकम शरीर के साथ संतुलन बनाना कोई आसान थोड़े ही है। 'साहिल' की स्पीड अच्छी है। घुटनों के बल दौड़ रहा है किन्तु अपने पर भरोसा नहीं, इसलिए पहले से ही हारने के लिए तैयार है और दुखी भी।

'मीनू' बहुत खुश है। नी पैड्स और हेलमेट के साथ समर में कूद चुकी है। उसके लिए युद्ध की तरह ही है यह खेल। पूरे आत्मविश्वास के साथ कुर्सी की तरफ लपकती हुई मीनू।

बच्चों से थोड़ी दूरी बनाकर हम सब भी लगातार चल रहे हैं। हमारा सारा ध्यान उन्हीं बच्चों पर केन्द्रित है। न जाने कब उन्हें हमारी जरूरत पड़ जाये।

इस बीच एक कुर्सी हटा दी गयी थी। कुल मिलाकर खेलने वाले बच्चों की संख्या है 'दस' किन्तु कुर्सियां हैं सिर्फ 'नौ'। म्यूजिक एकाएक बंद हो गया। अपने–अपने कब्जे में कम–से–कम एक कुर्सी करने के चक्कर में भगदड़ सी मच गयी। मीनू एवं सनी को छोड़कर सभी को कुर्सियां मिल चुकीं हैं। अभी एक कुर्सी खाली पड़ी है। दोनों मे होड़ सी लग गयी, कौन पहले पहुंचेगा उस खाली कुर्सी तक। आगे–आगे मीनू और उसके पीछे सनी। लगभग तय था कि मीनू आसानी से खेल में बनी रहेगी। किन्तु नहीं, अचानक संतुलन बिगडा और मीनू का सिर जमीन पर। सिर से जमीन पर अपने को आगे ढकेलती मीनू उठने की भरपूर कोशिश करने में जुटी हुयी थी कि तभी शीतल नेहा को दीवार के सहारे बैठा कर उसके पास पहुंची। उसे सहारा देकर उठा लिया। ये तो शुक्र था कि मीनू के सिर पर उस समय 'हैलमेट' था। नहीं तो काफी चोट लग सकती थी। सुनील सोनी को मौका मिल गया। इन सबके दौरान उसे खाली पड़ी कुर्सी आसानी से हासिल हो गयी। कुर्सी पर बैठकर वह बहुत खुश था।

''मीनू, चोट तो नहीं आयी?'' घबराकर अंजना उसके शरीर का मुआयना करने में जुट गयी।

''नहीं।'' खिसियानी हंसी के साथ वह घुटुरन चलते हुए कोने में बिछे गद्दे पर जाकर चुपचाप बैठ गयी और दर्शकों मे शामिल हो गयी।

''कोई बात नहीं मीनू, तुम्हारी कोशिश अच्छी थी। दोबारा जब यह गेम होगा तब तुम ही इस खेल को जीतोगी।''

अमित ने उसे ढांढस बंधाया। मीनू को चोट लगी थी किन्तु उसका उसे कोई मलाल नहीं था किन्तु खेल से बाहर हो गयी थी इस कारण रोनी सी सूरत बन गयी थी उसकी और अब किसी भी पल वह रोने वाली थी लेकिन अंजना दीदी की बातों ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। एक उम्मीद हो गयी उसे। अगली बार वही जीतेगी। 'बहादुर बच्ची'। अमित अक्सर कहती है–
''अवर मीनू इज ए ग्रेट फाइटर।''

हमें मालूम है कि योद्धा कभी हारने के लिए युद्ध के मैदान में नहीं उतरता। सोते–जागते हमेशा विजेता बनने का ख्वाब उसके मन में चलता रहता है। इसके अलावा उसे दूसरा कुछ नहीं सूझता।

खेल दोबारा आरम्भ हो गया। म्यूजिक स्टार्ट हो गया और बच्चों ने फिर से चलना शुरू किया। ठीक पहले की भांति अपने आगे वाली कुर्सी पर नजरें टिकाये वे कुर्सियों की परिक्रमा कर रहें हैं। एक कुर्सी और कम कर दी गयी। इस बार सुनील वर्मा बाहर हुआ। कुर्सी पहले निकलती फिर बच्चा निकलता और फिर कुर्सी। लगातार यही क्रम चलता रहा। दोनों, कम होते जा रहे थे। खेल में असफल होने पर बच्चे थोड़ा मायूस होते और फिर गद्दे पर पहुंचकर अपने–अपने अंदाज में बैठते जा रहे थे। कमरे के किनारे बिछे गद्दे पर बैठने वाले बच्चों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। गेम से बाहर निकलने वाले बच्चों की मायूसी कुछ देर रहती लेकिन थोड़ी देर बाद ही वे भी बाकी बचे बच्चों के खेल का आनन्द उठाने लगते। धीरे–धीरे खेल में मजा बढ़ता जा रहा था। खेल सबकी उत्सुकता बढ़ाने में समर्थ, किन्तु अंत की ओर अग्रसर था।

खेल में कुर्सियां बचीं हैं सिर्फ दो और बच्चे रह गये हैं तीन। इशिता के नी पैड्स ढीले हो गयें हैं और उसके घुटनों का साथ छोड़, फिसलते हुए टखने के पास पहुंच गयें हैं। लेकिन नी पैड्स का ध्यान किसे है? उसके चक्कर में पडी तो पीछे रहने की संभावना बढ़ जायेगी। जमीन पर घिसटते हुए घुटनों में दर्द तो जरूर हो रहा होगा पर अभी उस बारे में सोचने का समय नहीं है उसके पास। उसकी परवाह किये

बिना दौड़ रही है इशिता।

अंजना ने अमित के कान में कुछ कहा। खेल दो मिनट के लिए रोक दिया गया। अपनी–अपनी जगह पर बच्चे रुक कर खड़े हो गये। इशिता का नी पैड ढीला हो गया था उसे दुबारा कस कर बांध दिया गया।

म्यूजिक सिस्टम एक बार फिर ऑन हुआ और एक बार फिर से चलने लगे बच्चे। वे सब चल रहे हैं लगातार। थकान होने लगी है, उन्हें देखकर साफ समझ में आ रहा है। खेल में बचे हुए बच्चों को अपनी थकान महसूस करने का वक्त शायद अभी नहीं आया है। अपने आगे की कुर्सी पर गिद्धदृष्टि जमाये चलते जा रहे हैं निरंतर। हाथ, पैर, मुंह और आंखें सभी कुछ सुर्ख लाल हो चुकें हैं। म्यूजिक चल रहा है। बाहर हवा भी कुछ तेज रफ्तार से चल रही है। यहां इस कमरे में मौजूद ज्यादातर लोग भी चलते हुये बच्चों के साथ लगातार चलते जा रहे हैं।

''तीन बच्चे खेल मे अभी हैं। इनमें से कौन खेल जीतेगा? क्या मालूम।'' मैंने अपना कंधा झटका।

''कोई तो जीतेगा ही।'' मन में सोचा।

सनी, शीतल की क्लास का और इशिता एवं विनयना, नर्सरी के– जिसकी क्लास टीचर अंजना है। सभी बच्चे एक बराबर हैं किन्तु न जाने क्यों आज मेरा मन विनयना को ही जीतते हुए देखना चाहता है। ईश्वर को मानती हूं या नहीं ठीक से नहीं जानती तब भी आज अनजाने में उसी ईश्वर से उसकी जीत की कामना करती मैं भी लगभग उसके साथ–साथ चलती चली जा रही हूं। उसमें कुछ तो ऐसा जरूर है जिसकी वजह से जिस दिन वह स्कूल नहीं आती उस पूरे दिन कहीं कुछ खो जाने का अहसास सा होता है।

वहां उपस्थित सभी लोगों का ध्यान उन तीनों की तरफ लगा है। लेकिन उन के पास फुर्सत नहीं है कि वे हम सबको एक बार देख भी सकें। तीनों कुर्सियां कमरे के बीचोंबीच रखी हुयी थीं। तीनों बच्चे उनसे हट कर किन्तु उनके चारों तरफ चल

रहे थे। जब भी उनमें से कोई किसी कुर्सी के नजदीक पहुंचता उसकी रफ्तार धीमी हो जाती। करीब–करीब थम से जाते। उस समय वे दिल से यह मनाते हुए लगते कि म्यूजिक बंद हो जाये। अमित को बार–बार टोकना पड़ता। बच्चों को उसकी बात मानते हुए अनमने ढंग से ही लेकिन फिर से चलना पड़ता। कई बार कुर्सी के नजदीक पहुंचे बच्चे और वहां पहुंच कर रुके भी। कई बार अमित को अपनी बात दुहरानी पड़ी और फिर उन्हें कुर्सी को छोड़कर चलना भी पड़ा। इस खेल में जब तक म्यूजिक बजेगा तब तक बच्चों को चलना होगा, ऐसा अमित दीदी ने आरम्भ मे ही कहा था। क्या करते वे? खाली पड़ी कुर्सियों को देखते ही जैसे पिछली सारी हिदायतें उनके दिमाग से गायब हो जातीं और पुरानी हरकत दुबारा करने को वे मजबूर हो उठते। सामने की कुर्सी को छोड़कर आगे बढ़ते समय उनके चेहरे को देखकर ऐसा लगता जैसे किसी कड़वी चीज की वजह से उनके मुंह का जायका खराब हो गया हो और उनके चेहरे पर इस तरह का भाव तब तक बना रहता जब तक कि अगली कुर्सी के नजदीक वे नहीं पहुंच जाते।

एक झटके मे सब कुछ ठहर गया। इशिता हड़बड़ा गयी। सारे नियम कानून उसके दिमाग से गायब हो गये। अभी–अभी कुर्सी के पास से आगे बढ़ी थी। मुश्किल से एक कदम आगे। बस क्या था। पीछे घूम कर कुर्सी के नजदीक पहुंची। उसने उसे पकड़ लिया और विजयी भाव से पीछे आते सनी को देखकर मुस्करायी। सनी के पास कुर्सी नहीं थी। किन्तु इशिता गलत थी। उससे फाउल हुआ था। खेल से बाहर होना पड़ेगा इशिता को। कुछ देर तक कमरे में अफरातफरी मची रही।

दो बच्चे बच गये थे। दो टीम के बीच खेल चल रहा हो जैसे, ऐसा माहौल बन गया था वहां। दरअसल दोनों बच्चे अलग–अलग कक्षाओं से थे। विनयना नर्सरी की और सनी पहली कक्षा का छात्र था। वहां उपस्थित सभी लोगों के नजरों के केन्द्र बन चुके थे ये दोनों बच्चे। सबकी निगाहें चिपक सी गयीं थीं उन पर।

एक अकेली कुर्सी कमरे के बिल्कुल बीच में रखी हुयी थी। इस कुर्सी का महत्व उस समय बहुत बढ़ गया था। बच्चों को एक बार फिर से हिदायतें दी गयीं। उन्हें चलते रहना है लगातार। रुकना नहीं है। कुर्सी के पास पहुंचकर कोई नहीं रूकेगा और न ही म्यूजिक बंद होने पर वापस लौटकर कुर्सी पर बैठेगा। इस बार उन्हें कुर्सी से

दूर–दूर चलना होगा। अमित को ध्यान से सुना उन दोनों ने और सब कुछ ठीक उसी तरह से करने के लिए अपने आप को तैयार भी कर लिया। कमरे के बीच में रखी हुयी कुर्सी को लालसा भरी नजरों से देखते हुए आखिरी बार म्यूजिक सिस्टम ऑन होने का इंतजार करने लगे वे दोनों। अनिता ने हाथ बढ़ाकर अंतिम बार म्यूजिक सिस्टम का स्विच ऑन कर दिया।

दो टीमों में लोग विभाजित हो चुके थे। दोनों टीमें अपने–अपने खिलाड़ी को प्रोत्साहित करते हुए उत्तेजित थे। तानिश की तो हर बात निराली होती है। आंखें मटका–मटका कर विनयना को जोश दिला रहा था। उसकी तल्लीनता देखते ही बन रही थी। इस समय तक सारे नियम बच्चों को अच्छी तरह से याद हो चुके थे। वे उनका बखूबी पालन करते हुये जीतने की पूरी कोशिश कर रहे थे।

''कहीं कोई गलती न हो जाये नहीं तो कुर्सी मिलने के बावजूद इशिता की तरह हार झेलनी पड़ेगी।'' कुर्सी के नजदीक पहुंचकर चाल धीरे भी नहीं कर सकते। मन मसोसकर ही सही किन्तु चल रहे हैं वे लगातार।

''इस खेल में मुझे ही जीतना है।'' दोनों के मन की यही इच्छा है।

कुर्सी के नजदीक पहुंचने पर मन की यह इच्छा सिर उठाने लगती कि काश म्यूजिक रुक जाये परन्तु जब ऐसा नहीं होता तब आगे बढ़ना पड़ता और उनके चेहरे तनावग्रस्त हो जाते।

''मुझे लग रहा है कि विनयना जीतेगी।'' मैंने फुसफुसाते हुए कहा।

घुटनों चलती विनयना के कांपते हाथों के ऊपर नजरें जमाये हुए मुझे– अंजना देखती रही कुछ देर, किन्तु उसने कुछ कहा नहीं सिर्फ हल्के से मुस्करायी। उसे मालूम है, मेरी कमजोरी है विनयना।

अचानक जैसे समय ठहर गया। अनिता ने इस बार स्विच ऑफ करके प्लग भी निकाल दिया। अब उसे वहां लगे रहने का कोई मतलब नहीं। एक मिनट के लिए

सबकी सांस थम सी गयी। भाग रही है विनयना। भाग रहा है सनी। दोनों भाग रहें हैं। प्लग निकाला गया तब जब विनयना ने कुर्सी के आगे मुश्किल से दो कदम बढ़ाये होंगे। कुर्सी के बेहद नजदीक किन्तु दो कदम आगे। सनी बहुत पीछे था किन्तु अब आगे पहुंच गया है। पीछे मुड़कर कुर्सी के नजदीक विनयना नहीं पहुंच सकती। फाउल होगा। शीतल उछलने लगी। विनयना की जीत अब नहीं होगी। हम सब को जैसे सन्नाटे ने अपने घेरे मे लपेट लिया। हल्की सी आवाज भी किसी के मुंह से नहीं निकल पा रही है। उधर सनी के कक्षा के बच्चे ताली बजाने में मगन हो गये। उन लोगों ने उसके नजदीक पहुंचकर उसे चारों तरफ से घेर लिया और शीतल उसकी पीठ थपथपाने लगी। सनी का चेहरा खुशी से सराबोर था लेकिन अपनी खुशी कैसे जाहिर करे उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

विनयना ने कुछ भी नहीं कहा। न जाने क्या हुआ उसे। अपनी जगह पर रुक गयी। एक दम खामोश। पहले अमित की तरफ देखा फिर अंजना को भी। अपने उम्र के बच्चों में सबसे ज्यादा आई क्यू है उसका। हार बर्दाश्त करने की आदत नहीं है विनयना को। आंखें भरभरा आयीं उसकी। अब उसे कैसे संभाला जायेगा? आसान नहीं है ये हममें से किसी के लिए भी। थोड़ी देर पहले ताली बजाकर खुश होते बच्चों ने भी विनयना को देखा और वे सब भी चुप हो गये। सनी जीतने के बावजूद दुखी हो गया। न जाने क्यों, उसने सोचा कि अच्छा नहीं हुआ। उसे देख कर लग रहा था, जैसे हार उसी की हुयी है। सबने उसे घेर रखा था, किन्तु सबकी आंखें अब विनयना की तरफ मुड़ चुकीं थीं। उस घेरे से बाहर निकल कर वह आगे बढ़ा। उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं गया। विनयना के पास पहुंचकर उसे सांत्वना देते–देते वह भी रोने लगा। विनयना उसे रोते हुए देखती रही कुछ देर। फिर जाने क्या हुआ और उसने अपनी लड़खड़ाती जबान में सनी से पूछा–

''सनी तुम तो जीत गये हो फिर क्यों रो रहे हो ?''

''तुम रो रही हो न, इसलिये मुझे भी रोना आ रहा है।''

उसकी बात सुनकर विनयना हंसने लगी। उसके हंसते ही सब लोग मुस्कुराने लगे। बच्चे एक बार फिर से तालियां बजाने लगे। खेल के ऐसे अंत की तो किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी। एक बार फिर सनी की जीत हुयी थी।

.....

बिसात

राकेश बिहारी

(प्रिय मित्र विनय के लिए, जिसे देखते। सुनते इस कहानी का पता मिला)

'हम किसी चमकदार रोशनी के पीछे तेजी से भाग रहे हैं और अंधेरे का एक बड़ा–सा वृत्त लगातार हमारा पीछा कर रहा है। रोषनी और अंधेरे की यह भाग–दौड़ आखिर कब तक चलेगी...? जिस दिन हम उजाले की आंख में आंख डाल उससे सवाल करना सीख जाएंगे, अंधेरा उलटे पांव लौट जाएगा... और तब हमारी हैसियत प्यादे की नहीं वजीर की होगी...

...आज हैदराबाद विश्वविद्यालय विश्वनाथन आनंद को डाक्टरेट की मानद उपाधि नहीं दे सका। कारण कि प्रधानमंत्री कार्यालय के किसी अधिकारी ने यूनिवर्सिटी के प्रस्ताव को वापस करते हुए पूछा है कि क्या आनंद भारतीय नागरिक हैं? पिछले दस वर्शों से एक भारतीय के रूप में शतरंज की दुनिया की बादशाहत संभालनेवाले इस शख्स का इससे ज्यादा और क्या अपमान हो सकता है कि एक सरकारी अधिकारी उसकी नागरिकता पर ही सवाल खड़े कर दे। हो सकता है उस अधिकारी ने भारत के झंडे के साथ शतरंज खेलते आनंद की कोई तस्वीर कभी किसी न्यूज चैनल या अखबार में न देखी हो लेकिन क्या उसे फाइल वापस करने से पहले अपनी शंका का समाधान किसी दूसरे तरीके से नहीं कर लेना चाहिए था? कम से कम उसकी शंका एक महान खिलाड़ी के अपमान का कारण तो नहीं बनती...

शतरंज को अपना ओढ़ना–बिछौना बनाने का सपना देखनेवाला सारांश जब कभी आहत या तनावग्रस्त होता है उसकी नसों में एक अजीब–सा उबाल आ उठता है और उसकी डायरी ऐसे ही सवालों से भर जाती ह। 'इंटर–यूनिवर्सिटी चेस चैंपियनशिप' की तैयारी चल रही है और अगली सुबह उसे एकेडमी जाना है। एकेडमी यानी 'चैलेंजर्स चेस एकेडमी'... उसकी धमनियों में खून की तरह दौड़ता उसका सपना जो वहां आनेवाले लगभग दो दर्जन बच्चों की आंखों में जुगनू की तरह जगमगाता है। शतरंज सीखते उन बच्चों का उत्साह देखते बनता है जब सब के सब अपनी

साइकिल लिए दिसंबर की ठंड में भी नियत समय से दस–पंद्रह मिनट पहले यानी सुबह सवा छह बजे ही एकेडमी पहुंच जाते ह।

अपने स्कूल के दिनों में वह भी इसी वक्त मैथ्स का ट्यूशन पढ़ने जाया करता था। तब लड़कियों के लिए अलग बैच हुआ करते थे। चीजें भले ही धीरे–धीरे बदलें पर बदलती तो हैं ही। आज इतनी सुबह लड़कों के साथ–साथ दुपट्टे से सिर और कान लपेटे हुए साइकिल पर सवार लड़कियों को जब वह देखता है, फिजां में आया यह खुशनुमा बदलाव उसे एक नई ताजगी से भर देता है। पिछले सोमवार की सुबह जब वह एकेडमी पहुंचा बच्चे पहले से आ कर दरवाजे पर उसका इंतजार कर रहे थे। इस ठंड में उनका यूं बाहर खड़ा रहना स्वेटर, टोपी और दस्ताने के बावजूद उसे ठिठुरा गया था। तब से उसकी हमेशा यह कोशिश रहती है कि वह छह बजे ही वहां पहुंच जाए– और वहां छह बजे पहुंचने के लिए उसका पांच बजे जगना बहुत जरूरी है। उसने घड़ी की तरफ नजर दौड़ाई– साढ़े ग्यारह बजने को थे। उसे लगा अब उसे लाइट ऑफ कर के रजाई में घुस जाना चाहिए। उसने अपनी डायरी वहीं बंद कर दी।

आज प्रैक्टिस मैच खेला जाना था। सारांश की भूमिका आर्बिटर की थी। अन्वेषा उसकी टीम में नेशनल के लिए सबसे मजबूत दावेदार है। घर जाने से पहले वह एक गेम सारांश के साथ खेलना चाहती है...

'मैं तैयार हूं। लेकिन एक शर्त है'

'वह क्या सर –?'

'हम प्रतिद्वंद्वी की तरह खेलेंगे – और वह भी इंटरनेशनल के स्टैंडर्ड नियमों के अनुरूप।'

'यह तो और भी अच्छा है, सर। बिल्कुल फुल ड्रेस रिहर्सल की तरह।'

'तो ठीक है, निकालो बोर्ड – और हां, यह एक रैपिड मैच होगा चालीस मिनटों का।'

सारांश घड़ी और स्कोर–शीट निकालने के लिए अलमारी की तरफ बढ़ गया था। देखते ही देखते शतरंज का बोर्ड युद्ध का मैदान बन चुका था। मोहरे सैनिक की शक्ल में अपनी पोजीशन ले चुके थे। अन्वेषा का राजा बेस रैंक के काले खाने में और सारांश का राजा सफेद खाने में बैठ चुका था। पिछले साल अंडर फिफ्टीन जीत कर आया नीलेश जहां आर्बीटर की भूमिका में था वहीं अन्य बच्चे दर्शक दीर्घा में अपनी जगह ले चुके थे। नीलेश के स्टार्ट कहते ही इधर सारांश की उंगलियों ने घड़ी की बटन दबाई और उधर अन्वेषा ने अपने राजा के आगे खड़े सिपाही को दो कदम आगे बढ़ने का निर्देश दे दिया।

स्कोर–शीट पर अन्वेषा की पहली चाल को लिखते हुए सारांश ने यह दर्ज किया कि यह भले ही एक सामान्य–सी चाल थी लेकिन अपने प्यादे को आगे बढ़ाती अन्वेषा की उंगलियों में गजब की थिरकन थी। मानो उसकी आंखों की सपनीली चमक और उंगलियों के पोर–पोर में समाई फुर्ती के बीच एक अनकही प्रतिस्पर्धा चल रही हो। जवाबी हमले में सारांश ने भी अपने राजा के ठीक सामने खड़े प्यादे को ही दो घर आगे बढ़ाया था। अपने–अपने राजा की सीधी सुरक्षा में खड़े दोनों सिपाही अब बिल्कुल आमने–सामने थे।

...वह भी लगभग इसी उम्र का रहा होगा जब 'ऑल इंडिया इंटर–यूनिवर्सिटी चैंपियनशिप' खेलने के लिए हरिद्वार गया था। यूनिवर्सिटी उसके खेल पर नाज करती थी । और वह उसकी उम्मीदों पर सौ फीसदी खरा उतर रहा था। छह राउंड तक शत प्रतिशत स्कोर करनेवाले पांच खिलाड़ियों में एक नाम उसका भी था। उन पांच खिलाड़ियों की याद भर से उसके भीतर एक टीस–सी उठती है। उनमें से दो आज ग्रैंड मास्टर का खिताब प्राप्त कर चुके हैं और अन्य दो भी राष्ट्रीय स्तर पर पहचाने जाते हैं... पर सातवें राउंड तक आते–आते जैसे सारांश के लिए उस टूर्नामेंट की दिशा–दशा ही बदल गई थी। उसकी कठिन चाल के बाद उसके प्रतिद्वंद्वी के चेहरे पर शिकन की लकीरें साफ–साफ झलक रही थीं। जवाब में उसकी उंगलियां जिस दिशा में बढ़ना चाहती थीं उसे देख कर वह एक बार फिर संभावित जीत की पुलक से भर उठा था कि तभी विरोधी टीम के कप्तान ने उसके प्रतिद्वंद्वी के कानों में कुछ कहा था... उसके अस्फुट–से स्वर उस तक भी पहुंचे थे और प्रतिद्वंद्वी की उंगलियों ने अपना रुख बदल लिया था। बीच में ही खेल छोड़ कर अपनी शिकायत लिए वह

आर्बीटर तक भागता हुआ गया था लेकिन उसकी एक न सुनी गई थी... 'आपको शिकायत करने का कोई हक नहीं है। ऐसा सिर्फ आपके टीम मैनेजर ही कर सकते हैं। ' वह चाह कर भी उनसे नहीं कह पाया था कि उसके टीम मैनेजर लक्ष्मण झूला देखने गए हैं... वैसे भी टीम मैनेजरों के लिए तो ऐसे ट्रिप तीर्थाटन और घूमने–फिरने का बहाना भर ही हुआ करते थे। बहुत जोर–जुगाड़ बैठाने के बाद कोई प्राध्यापक टीम मैनेजर बन पाता था। हर की पौड़ी में डुबकी लगाने और मनसा देवी के दर्शन करने के सिवा उसके टीम मैनेजर के यहां आने का कोई दूसरा उद्देश्य भी कहां था. .. अपने कप्तान की मदद से उसका विरोधी सातवीं बाजी जीत तो नहीं पाया था, हां, उसे खेल ड्रा करने में सफलता जरूर मिल गई थी । लगातार छह जीत के बाद का यह ड्रा उसे परेशान कर गया। उसकी आंखें बोर्ड पर थीं लेकिन उसके दिमाग का घोड़ा खेल के मैदान से बहुत दूर किसी घने जंगल में अनेकानेक बाधाओं–अवरोधों से जूझता, लहू–लुहान होता किसी अज्ञात दिशा में भागा जा रहा था। उसी खीज और बेचैनी में टूर्नामेंट के अगले चार राउंड उसके हाथ से फिसल गए थे।

...अन्वेषा के किंग साइड में ऊंट और किश्ती के बीच खड़े घोड़े ने दो कदम सीधे चलने के बाद एक कदम बाएं मुड़ कर ढाई घर का सफर पूरा कर लिया था। जवाब में क्वीन साइड के घोड़े को सी फाइल के छठे रैंक तक पहुंचाने के क्रम में सारांश को खयाल आया कि उस दिन उस विरोधी कप्तान ने उसके प्रतिद्वंद्वी को घोड़े की चाल ही सुझाई थी। एक के बाद एक तीन बाजी हारते हुए उसे अपने टीम मैनेजर राम प्रवेश सिंह पर जितना गुस्सा आया था उससे ज्यादा उसे नागेंदर बाबू की कमी खली थी। वह जानता था यदि नागेंदर बाबू उसके टीम मैनेजर होते तो ऐसा कतई नहीं होता। उसे याद है कि पटना में आयोजित पहले राज्य स्तरीय इंटर–यूनिवर्सिटी चैंपियनशिप 'एकलव्य' में जब उसकी टीम खेल रही थी अपने बच्चों के साथ वे परछाई की तरह लगे रहते थे। नागेंदर बाबू उसके कॉलेज में खेल–कूद और शारीरिक शिक्षा के प्राध्यापक थे। कायदे से उन्हें ही टीम मैनेजर बन के जाना चाहिए था। लेकिन विश्वविद्यालय की राजनीति में नॉन–टीचिंग स्टाफ को दूसरे दर्जे का नागरिक ही समझा जाता था । और ऊपर से यदि वह नॉन–टीचिंग स्टाफ नागेंदर बाबू की तरह किसी बैकवार्ड या दलित जाति से हुआ तो फिर तो उसका भगवान ही मालिक । शतरंज की भाशा में कहें तो उसकी स्थिति युद्ध के मैदान में खड़े उस पैदल सिपाही की–सी होती थी जिसे राजा की सुरक्षा के नाम पर जब चाहे कुर्बान

किया जा सकता था। मतलब यह कि खेल के मैदान में उसके पसीने का नमक तो खूब बहता लेकिन जब किसी टीम को ले कर बाहर जाने के लिए ट्रेन के एसी टू कोच में आरक्षण कराने की बारी होती तो किसी न किसी फॉरवर्ड कास्टवाले का ही नंबर लगता। किसी टीम को ले कर पटना, दरभंगा, समस्तीपुर या अपने ही राज्य के किसी दूसरे शहर में जाने को तब बाहर जाना नहीं माना जाता था। कारण कि दो–तीन दिनों के उस टूर्नामेंट में जाने के लिए एक तो झारखंडी बसों में धक्के खाने होते थेय दूसरे, अन्य राज्यों के बड़े शहरों की तरह घूमने–फिरने या फिर यूनिवर्सिटी टूर के नाम पर पैसे बनाने का भी कोई स्कोप नहीं होता था... और फिर राम प्रवेश सिंह के पिता जी ने वर्षों पहले हरिद्वार के मनसा देवी मंदिर में उनके प्रोफेसर बनने के लिए मनौती भी मांगी थी। राम प्रवेश सिंह प्रोफेसर तो बन गए थे लेकिन पिताजी की मनौती की गांठ अब तक खोली नहीं गई थी। सरकारी खर्चे पर जा कर पिता जी की यह अधूरी इच्छा पूरी करने और उनके चरण चिह्नों पर चलते हुए अपने बेटे की नौकरी के लिए एक और गांठ बांध आने का इससे अच्छा मौका और क्या मिलता। राम प्रवेश सिंह ने टीम मैनेजर बनने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी थी।

जिस दिन हरिद्वार जानेवाली टीम की घोषणा हुई थी, सारांश ने अपनी डायरी में लिखा था... 'आज फिर एक राजा को बचाने के लिए एक सिपाही की बलि दे दी गई। मैंने जानबूझ कर पापा को यह नहीं बताया कि नागेंदर बाबू के बदले केमेस्ट्रीवाले राम प्रवेश सिंह टीम मैनेजर के रूप में हरिद्वार जा रहे हैं। वरना वे फिर कहते... । खेल में कैरियर बनाना इतना आसान नहीं है। ऊपर से इन 'भू–धातुओं' (भूमिहारों) के रहते तुम्हारे लिए तो और भी नहीं... हमारे जमाने में तो डॉक्टर–इंजीनियर बनना भी... सोचता हूं जब पापा इंजीनियर बन गए तो मैं शतरंज का खिलाड़ी क्यों नहीं बन सकता? नागेंदर बाबू के बारे में सोच कर बहुत ज्यादा तकलीफ होती है । यदि प्रिंसिपल कोई बैकवर्ड होता तो शायद आज हमारे टीम मैनेजर वही होते...'

बोर्ड के ऊपर रोशनी का तना घेरा अन्वेषा और सारांश दोनों को अपनी परिधि में समेटे खामोशी से खड़ा था... अन्वेषा की निगाहें अपने राजा की दाहिनी तरफ खड़े ऊंट पर गइ। वह निर्बाध गति से तीसरे रैंक तक जा सकता था। लेकिन उसने उसे एक रैंक पहले ही रोक कर अपने गुरु के घोड़े पर आक्रमण कर दिया। सारांश ने किश्ती के सामने खड़े सिपाही को एक कदम आगे बढ़ा कर अन्वेषा के ऊंट पर

जवाबी हमला किया था। अन्वेषा को एक–एक चाल चलने के पहले क्लास में सारांश की कही बातें याद आ रही थीं। उसने चोर निगाहों से सामने बैठे अपने गुरु के चेहरे की तरफ देखा। वहां गुरु का नामोनिशान नहीं था... उसकी जगह किसी प्रतिद्वंद्वी ने ले ली थी। उसने उस प्रतिद्वंद्वी के घोड़े पर हमला बरकरार रखते हुए अपने ऊंट को बचा लिया... सारांश अपनी शिष्या की चाल पर खुश हुआ था। लेकिन अन्वेषा की इस सधी चाल ने उसे अगले ही पल और चौकन्ना कर दिया। अन्वेषा और उसके जैसे कई दूसरे बच्चों को देख कर उसे एक खास तरह के संतोष के साथ एक अजीब तरह की कसक भी महसूस होती है। अन्वेषा के पिता उसके कैरियर को ले कर काफी सजग हैं। वे अक्सर उसे एकेडमी छोड़ने आते हैं। साधन की कमी तो उसके पापा के पास भी नहीं थी। लेकिन उन्हें खेल में कभी कोई भविष्य दिखा ही नहीं। वे इंजीनियर थे और उसे भी इंजीनियर ही बनते देखना चाहते थे। सारांश के साथ पढ़नेवाले दूसरे बच्चे, जिनमें कई उसकी तुलना में कमजोर भी थे, बीआईटी–आईआ. ईटी का एंट्रेंस निकाल कर इंजीनियर बनने का सपना लिए हर साल शहर छोड़ कर सिंदरी और रुड़की जा रहे थे। सारांश लगातार तीन साल इंजिनियरिंग की प्रवेश परीक्षा में नाकामयाब रहा। पीसीएम (फिजिक्स, केमेस्ट्री, मैथ्स) के कठिन से कठिन सवालों को हल करने की काबिलियत उसमें भी थी लेकिन उसका मन हमेशा बोर्ड पर खड़े विरोधी राजा को असहाय करने की नई तरकीबें खोजने में लगा रहता।

पापा तब बहुत मुश्किल से उसे शतरंज खेलने देने के लिए राजी हुए थे। लेकिन सामयिक दबाव में जबरन ओढ़ा हुआ विश्वास कब तक ठहरता, डेढ़–दो साल में ही उनका धैर्य जवाब देने लगा था – वह तब तक डिस्ट्रिक्ट चौंपियन हो चुका था और उसके बाद से ही नेशनल के लिए भी चुना जाने लगा था – राष्ट्रीय दैनिकों के स्थानीय संस्करणों में उसकी तस्वीरें छपने लगी थीं – लेकिन यह सब पापा के लिए बेमानी थे... सारांश जब कभी अपने पापा के बारे में सोचता है उसे प्रख्यात अमेरिकी शतरंज खिलाड़ी रुबेन फाईन की याद हो आती है जिसने अपनी किताब 'द साइकॉलोजी ऑफ चेस' में राजा की तुलना पिता से की है... बेहद महत्वपूर्ण ले. किन कमजोर – पापा राजा की तरह ही बेहद संवेदनशील थे और उसे और उसके कैरियर को ले कर घर में सबसे ज्यादा असुरक्षित और आशंकित भी – उस दिन ऑनर्स के रिजल्ट के साथ पापा का नया फैसला भी आया था... इंजीनियरिंग में नहीं हुआ तो क्या, अब तुम आईएएस की परीक्षा देने लायक हो गए – दिल्ली जाने की

तैयारी करो...

'जीत' और सिर्फ 'जीत', यही मायने रखती है अन्वेषा के लिए... यदि उसे अपने प्रिय खेल की दुनिया में बने रहना है तो उसे हर हाल में जीतते रहना होगा – वह हारी नहीं कि उसके डैड उसका शतरंज छुड़वा देंगे – उन्हें खेल से कोई दिक्कत नहीं है... अपनी बेटी के खिलाड़ी होने से भी नहीं – लेकिन हर जगह उसे अव्वल ही देखना चाहते हैं वे – शुरू–शुरू में तो वे उसे टेनिस, स्वीमिंग या एथलेटिक्स में जाने को कहते थे... ये खेल हमें फिजिकली फिट रखते हैं – शतरंज तो लड़कों का खेल है... शायद उनके दिमाग में पी.टी. उशा, सानिया मिर्जा और सायना नेहवाल जैसे नाम ही गूंजते होंगे... पर अन्वेषा को शतरंज के अलावा कभी कुछ और नहीं दिखा...

'कैसलिंग'... अन्वेषा को प्रतिद्वंद्वी बने अपने गुरु की बातें शब्द–दर–शब्द याद थीं... जिस तरह युद्ध में किसी राजा का बंदी बनाया जाना ही उसकी हार है – उसी तरह शतरंज में जीतने के लिए अपने राजा की सुरक्षा के साथ–साथ विरोधी राजा को बंदी बनाना भी बेहद जरूरी होता है... विरोधी राजा पर हमला करने के लिए जरूरी है कि ज्यादा से ज्यादा मोहरों को लड़ने के लिए तैयार रखा जाये और इसके लिए राजा को ऐसी जगह होना चाहिए कि उसकी सुरक्षा में कम से कम मोहरों की जरूरत हो – राजा और किश्ती की अदला–बदली इसी का एक तरीका है... अन्वेषा के राजा ने दो कदम दाहिनी तरफ चल कर खुद को एक सिपाही की ओट में कर लिया था – राजा के हरकत में आते ही दाहिने कोने पर खड़े किश्ती ने अपनी जगह बदलते हुए खुद को राजा के ठीक बाईं तरफ कर लिया – जवाब में सारांश ने क्वीन साइड के ऊंट को एक कदम आगे बढ़ा कर अपने राजा के ठीक सामने रख दिया था।

...उस रात सारांश से ठीक से खाया भी नहीं गया – पापा अब उसे और शतरंज खेलने नहीं देना चाहते यह उसके लिए कोई अप्रत्याशित खबर नहीं थी – लेकिन उसे दुख इस बात का था कि उन्होंने यह बात सीधे–सीधे उससे नहीं कही थी – इसके लिए उन्होंने उसके दोस्त अमित के पापा का सहारा लिया था – उस रात वह देर तक अपनी डायरी लिए बैठा रहा... मन के भीतर भयानक झंझावात था... बिसात के सारे मोहरे बेधड़क अपनी चालें चले जा रहे थे... घोड़ा ढाई घर चारों तरफ, किश्ती सीधा जहां तक जगह खाली मिले, ऊंट डॉयगनली जहां तक न थके... वजीर कभी

हाथी की तरह तो कभी ऊंट की तरह... एक–एक कदम चलते सिपाही एक–एक कर शहीद हुए जा रहे थे... चौतरफे हमले से घिरा राजा कभी इस घर तो कभी उस घर बचने की कोशिश में पसीने से तर–ब–तर था... उस रात उससे अपनी डायरी में एक शब्द भी नहीं लिखा गया – वह देर तक डायरी के कई–कई पन्नों पर प्रश्नवाचक चिह्न और क्रॉस के निशान बनाता रहा...

यह सब सारांश की आँखों में इस तरह समाया था जैसे कोई कल की बात हो – ...अन्वेषा ने बाईं तरफ से खड़े अपने तीसरे सिपाही को एक कदम आगे बढ़ाते हुए घड़ी की बटन दबा दी – सारांश ने अपने मंत्री के ठीक सामने खड़े सिपाही को दो कदम आगे बढ़ाया – उसे पता था कि अन्वेषा का सिपाही उसके इस सिपाही को जिंदा नहीं छोड़ेगा लेकिन खेल पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए अपने प्यादे का यह बलिदान उसे जरूरी लगा था – नागेंदर बाबू शब्द–दर–शब्द उसकी रगों में बह रहे थे... पैदल सैनिकों की हमेशा से बलि दी जाती रही है, शतरंज ही नहीं युद्ध में भी – मध्य काल में इन सिपाहियों को आम नागरिकों का प्रतिनिधि माना जाता था – तब पहला प्यादा किसान, दूसरा लोहार, तीसरा बुनकर, चौथा व्यवसायी, पांचवां डॉक्टर, छठा भठियारा, सातवां सिपाही और आठवां जुआरी कहा जाता था लेकिन कालांतर में सब के सब सिपाही हो गए – नाम भले बदल दिए गए हों, सत्ता और शतरंज आज भी सबसे पहले इन्हीं आम नागरिकों की बलि मांगता है...

...उस रात जब सारांश की कलम के शब्द चुक–से गए थे, आंखों में गहरी नींद कहां से होती – सारी रात वह तरह–तरह के सपने देखता रहा था – वह दिल्ली जाने के लिए अपने सामान बांध रहा है... पापा उससे उसका चेस बोर्ड छीन रहे हैं... वह बोर्ड ले कर सरपट पीछे की ओर भाग रहा है कि तभी उसे सामने से कोई आता दिखाई पड़ता है... आनेवाले शख्स का चेहरा चेन्नई से निकलनेवाली शतरंज की पत्रिका 'चेसमेट' में छपी बॉबी फिशर की तस्वीर जैसी है... उसे सपने में भी विश्वास नहीं हो रहा कि शतरंज का पहला अमेरिकी विश्व चैंपियन और उसका फेवरिट खिलाड़ी बॉबी फिशर उसके सामने खड़ा है... वह अपने हाथ उसकी तरफ बढ़ाना ही चाहता है कि उसकी आंखें खुल जाती हैं... सपने में बॉबी फिशर क्या आया था जैसे उसके इरादों को सुनहले पंख मिल गए थे – बाहर रात का घना अंधेरा था और भीतर कमरे में टेबल लैंप की पीली रोशनी में उसकी डायरी पर उसके शब्द जैसे एक नए

उजाले की तहरीर लिख रहे थे... 'मेरा सपना कुछ देर और बना रहता तो क्या होता –? बॉबी फिशर महज चौदह की उम्र में अमेरिका का चैंपियन हो गया था – क्या उसकी राह में सिर्फ फूल ही फूल बिछे रहे होंगे –?'

उसने अपने साथ दिल्ली ले जानेवाले सामान की सूची बनाई – इस सूची में कुछ चीजें सबसे ऊपर थीं जिन्हें उसने अंडरलाइन भी कर दिया – शतरंज, जोश कैपाब्लांका की किताब 'फंडामेंटल्स ऑफ चेस' और एरॉन नेमजोविच की 'माई सिस्टम' –

...अन्वेषा की चौकन्नी निगाहों ने अपनी किश्ती पर मंडरा रहे खतरे को पहचान लिया था – उसने उसे चार कदम पीछे खींचते हुए बेस रैंक में बैठे मंत्री के बगल में ला खड़ा किया – अब खेल में पहली बार कोई वजीर अपनी जगह से हिला था – सारांश ने अपने वजीर को बाईं तरफ तिर्यक जहां तक जगह थी दौड़ जाने दिया – दरअसल वजीर का इस तरह बेधड़क दुश्मन खेमे में जाना अगली चाल में एक दुश्मन प्यादे को मार कर विरोधी राजा पर हमले की तैयारी थी –

अन्वेषा को अपने गुरु की यह चाल चुनौतीपूर्ण लगी थी – उसे क्लास में कही सारांश सर की बातें याद हो आईं... 'अ थ्रेट इज ए मोर पोटेंट वैपन दैन इट्स एक्जेक्यूशन।' विरोधी खेमे का वजीर लगातार उसकी पेशानियों पर बल डाल रहा था... क्वीन बिसात का सबसे ताकतवर मोहरा होता है, यहां तक कि बादशाह से भी ज्यादा – शतरंज के इतिहास में इस मोहरे के विकास की कहानी भी बड़ी दिलचस्प है – शुरुआत में तो यह मोहरा भी मर्द ही था... परसिया (यूनान) में इसे 'फर्जान' कहते थे जिसका मतलब होता है सलाहकार – तब यह उतना ताकतवर भी नहीं था, इसे राजा की सुरक्षा में बस एक कदम तिर्यक चलने की इजाजत थी – बाद में अरब से होते हुए जब यह खेल यूरोप पहुंचा, 'फर्जान' 'फर्स' में बदल चुका था – यूरोपियन्स 'फर्स' का मतलब नहीं समझ पाए थे और सिर्फ 'किंग' के बगल में होने के कारण इसे उन्होंने 'क्वीन' कहना शुरू कर दिया...

'सर, जब 'किंग' को हिंदी में राजा कहते हैं तो 'क्वीन' को रानी क्यों नहीं कहा जाता? हम इसे अब भी मंत्री ही क्यों कहते हैं?'

अन्वेषा के इस सवाल ने सारांश को कुछ परेशान किया था... मैं तुम्हारे इस सवाल का ठीक–ठीक जवाब नहीं दे सकता लेकिन हां, इतना बता सकता हूं कि 'क्वीन' को यह ताकत पंद्रहवीं शताब्दी में स्पेन में मिली – उस वक्त वहां औरतों की स्थिति हमारे देश की औरतों से ज्यादा अच्छी थी – वहां के लोग स्पेन की महारानी इसबेल्ला से गहरे प्रभावित रहे हों शायद...

...अन्वेषा की परेशानी बढ़ती जा रही थी और वह ठीक–ठीक नहीं समझ पा रही थी कि इस परेशानी का कारण बोर्ड पर विरोधी वजीर की यह चुनौतीपूर्ण चाल थी या फिर क्लास में बताई गई 'क्वीन' की ताकतें... गुरु ने क्लास में सिर्फ वजीर की ताकतें ही नहीं बताई थीं उनका काट भी बताया था – सारांश के बताए अनुसार अन्वेषा के लिए अभी जी–थ्री स्क्वायर पर खड़े सिपाही को आगे बढ़ा कर खतरे का सामना करना बहुत आसान था – लेकिन वह मंत्री की इस चाल का कोई मौलिक काट ढूंढ़ रही थी... उसे लगा उसने काट खोज ली है और उसने राजा की तरफ खड़े किश्ती के ठीक सामने के सिपाही को एक कदम बढ़ा कर हमलावर वजीर के ठीक आगे कर दिया –

सारांश के भीतर बैठा प्रशिक्षक अपनी शिश्या की इस चाल से दुखी हुआ था – क्लास में उसकी ऐसी गलती पर शायद वह चीख भी पड़ता – लेकिन उसके भीतर बैठा अनुभवी खिलाड़ी अपनी इस गुरुता पर कहीं न कहीं खुश भी था... – सारांश ने आठवें रैंक के सफेद खाने में खड़े काले ऊंट को बेधड़क आगे बढ़ाया और देखते ही देखते एक सफेद सिपाही धराशायी हो गया – जवाब में राजा के आगे खड़े अन्वेषा के सिपाही ने अभी–अभी अपने साथी को मार कर अकड़ रहे ऊंट को बिना पलक झपकाए मौत के घाट उतार दिया...

...सारांश ने एक बार फिर अपने वजीर को उम्मीद भरी निगाहों से देखा, उसे एक कदम आगे बढ़ाया और पलक झपकते ही काले ऊंट को मार गिरानेवाला सफेद सिपाही मैदान के बाहर –

वजीर जितना ताकतवर होता है सारांश उसका उतना ही खूबसूरत इस्तेमाल करता है– लेकिन पता नहीं क्यों जब कभी वह 'क्वीन' की कोई उम्दा चाल चलता है, खुश

होने के बजाय वह असहज हो जाता है...सीमा दी घर में अकेली थीं जिन्होंने शतरंज खेलने या उसमें अपना कैरियर बनाने से उसे कभी मना नहीं किया – आज जब वह पीछे पलट कर देखता है तो उनके प्रति उसका मन कृतज्ञता से भर जाता है – उसके जीवन में शतरंज नहीं होता यदि समय–समय पर उन्होंने उसका हौसला नहीं बढ़ाया होता – जब उसने दिल्ली से लौट कर चेस एकेडमी शुरू करने की बात की थी, सीमा दी काफी उत्साहित थीं – लेकिन उस दिन उन्होंने उसे जो कहा था वह उसके लिए किसी चुनौती से कम नहीं था... 'सारांश, 'क्वीन' शतरंज की सबसे स्ट्रांग पीस होती है लेकिन इस खेल में चैंपियन प्रायः पुरुष ही होते हैं – कितनी विरोधाभासी है यह बात कि जिस खेल में सबसे ताकतवर एक महिला होती हो उसमें सिर्फ और सिर्फ पुरुषों का वर्चस्व है – उम्मीद करूं कि तुम्हारी एकेडमी इस खेल को कुछ सचमुच के 'क्वीन्स' देंगी –?'

दिल्ली से लौटना भी उतना आसान कहां था... 11 सितंबर 2002 की रात थी – वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर अविश्वसनीय आतंकवादी हमला हुआ था – आग की तेज लपटों और काले–घने धुएं के बीच खाक होती उस इमारत को देख उसे 1994 में हुए उस वर्ल्ड चैंपियनशिप की याद हो आई थी जब विश्वनाथन आनंद ने पहली बार गैरी कासपरोव को चैलेंज किया था – उस दिन देर रात तक टेलीविजन पर आंखें गड़ाए वह उस मैच का सीधा प्रसारण देखता रहा था– वह ऐतिहासिक मैच इसी इमारत में हुआ था – 11 सितंबर की वह रात उसके जीवन की सबसे बेचैन रातों में से एक थी – उस रात उसने अपनी डायरी में लिखा था... 'आनंद के खूबसूरत कैरियर में आया एक यादगार मील का पत्थर आज तबाह हो गया... क्या मेरी जिंदगी भी एक दिन वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की तरह तबाही की धुआँते लपटों से घिर जाएगी? मैंने बहुत कोशिशें कीं... लेकिन शायद इससे आगे मैं नहीं जा सकता – हर महीने पापा का ड्राफ्ट समय से आ जाता है – वे सोचते हैं मैं आईएएस बनूंगा और मैं यहां 'सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल' की जगह 'चेसमेट' खरीदता हूं... भूगोल और पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की किताबों से लाइब्रेरी भरी पड़ी है लेकिन मैं हर अगले दिन चेस से जुड़ी कोई नई किताब इश्यू करवा लाता हूं– इन किताबों में छुपे ज्ञान की बदौलत मैं शतरंज के देआी–विदेशी सिद्धांतों पर किसी से बहस कर सकता हूं – लेकिन बिना टूर्नामेंट्स खेले इन सिद्धांतों को व्यवहारिकी में कैसे उतारूं –? टूर्नामेंट में भाग लेना खर्चीला है... ट्यूशन भी पढ़ा कर देख लिया – पैसे जोड़ने में लग जाओ तो खेल प्रभावित होता है और आगे खेलने के लिए पैसे चाहिए... आइएएस बनना मेरे सपने का हिस्सा नहीं है... पापा को इस तरह अंधेरे में रखना भी अच्छा नहीं लगता... हर बार ड्राफ्ट भँजाते हुए भीतर कचोटता है कुछ... अमित एमबीए करने जा रहा है – लाखों का खर्च आएगा और उसे लोन देने के लिए बैंको के बीच जैसे होड़ लगी है – लेकिन यहां तो इतनी अनिश्चितता है कि... आगे खेलना मुश्किल लगता है... मुझे अपना खेल छोड़ना होगा... जितनी जल्दी हो सके मुझे अपने शहर लौट जाना चाहिए...'

...सफेद बादशाह एक बार फिर खतरे में था – अन्वेषा ने उसे राइट कार्नर पर लगभग धकेलते हुए शह बचाने की कोशिश की – सारांश अपनी शर्तों के अनुसार पूरी तरह प्रोफेशनल था – उसने अन्वेषा को कोई रियायत नहीं दी – उसके घोड़े ने पहले एक सफेद सिपाही को फांदा और एक कदम बाएं जा कर विरोधी ऊंट पर कब्जा कर लिया...

...मुजफ्फरपुर से दिल्ली तक की यात्रा कर चुका एकलव्य अपने शहर लौट कर द्रोणाचार्य की भूमिका में आ गया था – खेल को ले कर होनेवाली राजनीति और उपेक्षा की कहानियां अब भी धुंधलाई नहीं थीं – लेकिन अभिभावकों का रुख अब बदलने लगा था – शहर के बच्चों में जैसे अर्जुन बनने की होड़ लगी थी... माहौल में तैर रहे बदलाव की यह हल्की–सी खुशबू भी उसका हौसला बढ़ाने के लिए कम नहीं थी –

पापा उसके लौट आने से हैरान थे और दुखी भी – अगले साल उनकी रिटायरमेंट थी – उन्होंने उससे बोलना लगभग बंद कर दिया था –

पापा की चुप्पी और 'चैलेंजर्स चेस एकेडमी' में बच्चों की संख्या दोनों समान अनुपात में बढ़ रहे थे –

...सारांश जब कभी अकेले में होता उसे पापा की चुप्पी जोर–जोर से सुनाई पड़ती – वह उनकी चुप्पी की परतों को उघाड़ कर देखने की कोशिश करता और हर बार इसी नतीजे तक पहुंचता कि आज्ञाकारी पुत्र का अभिनय उसे बहुत पहले छोड़ देना चाहिए था, शायद पापा का दुख तब इतना घना नहीं होता –

...अन्वेषा ने एक और शह बचाने के लिए राइट कार्नर पर खड़े राजा को एक घर बाईं तरफ सरकाया था... सारांश ने एक और शह दिया – उसका वजीर एक कदम पीछे जा कर सफेद बादशाह के लिए फिर से खतरा बन गया था... सफेद बादशाह ने इस बार अन्वेषा की सलाह का इंतजार भी नहीं किया और अपने ठीक बाईं तरफ के खाली घर में भाग खड़ा हुआ – गुरु द्रोण का वजीर दो कदम दाएं चल कर एक सफेद सिपाही को अपनी जमीन से बेदखल करते हुए विरोधी बादशाह के सामने आ खड़ा हुआ था – अन्वेषा इस शह को बचा नहीं सकी और गुरु के हाथों उसकी मात हो गई...

खेल बिसात पर खत्म हो गया था, दिमाग में नहीं... 'सर, बिना पोस्ट मैच अनालिसिस के तो...'
'गुड, मैं तुम से यही सुनना चाहता था –'

'सर, मुझसे कहां गलती हुई?'

'गलती नहीं, चौदहवीं चाल में तो तुमने ब्लंडर ही कर दिया – मुझे तो अब भी भरोसा नहीं हो रहा... तुम्हारे जैसी ब्रिलिएंट खिलाड़ी इतनी बड़ी भूल कैसे कर सकती है?' सारांश के भीतर की खीझ जैसे उबल ही आई थी –

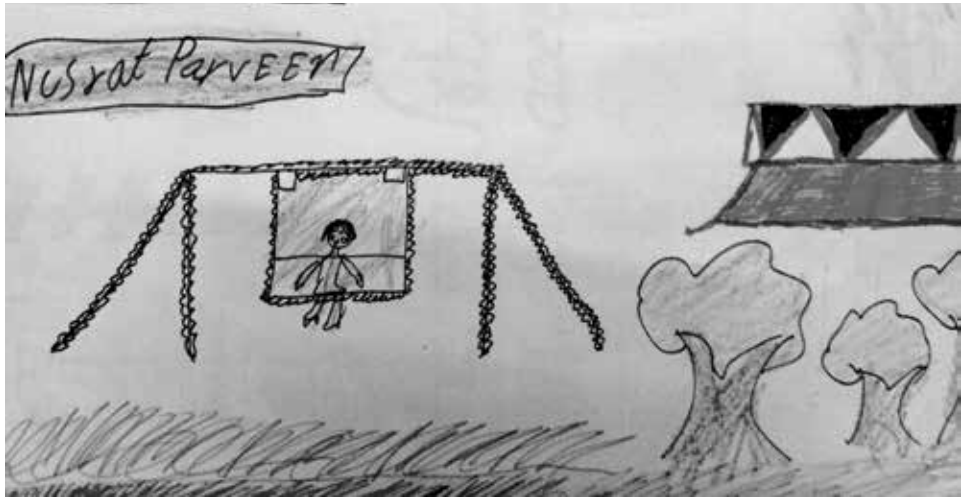

'सर, मुझे आपकी बातें पूरी तरह याद थीं – मुझे जी–थ्री चलना चाहिए था – लेकिन मैं कुछ नया करना चाहती थी –' अन्वेषा के स्वर में एक खास तरह की दृढ़ता थी –

'मुझे यह जान कर अच्छा लगा कि तुमने कुछ नया करने की कोशिश की थी – लेकिन किसी टूर्नामेंट में इस तरह की जोखिम उठाने से बचना चाहिए – अपने समय में मैंने भी ऐसी कई गलतियां की हैं... नए प्रयोग तैयारी का हिस्सा होते हैं – मैच और टूर्नामेंट में तो...'

अगले दिन 'ऑल इंडिया इंटर–यूनिवर्सिटी चैंपियनशिप' के लिए पांडिचेरी जाना था – सारांश सामान ठीक कर रहा था और उसके मोबाइल की घंटी बजी थी... 'सर, डैड को ऑफिस के जरूरी काम से कल दिल्ली जाना है... उनकी छुट्टी कैंसिल हो गई है –' अन्वेषा की बातों ने सारांश को सकते में ला दिया था और इसी बीच फोन कट गया... सारांश देर तक उसका फोन लगाने की कोशिश करता रहा – रात की सियाही पर करियाए बादल और ज्यादा तह जमाने लगे थे – पैकिंग अधूरी छूट गई – मोबाइल की स्क्रीन पर नेटवर्क के पुनः बहाल होने की प्रतीक्षा में सारांश ने उस दिन की डायरी लिख डाली... 'क्या अन्वेषा ने जाने से मना करने के लिए फोन किया था –? क्या राजा आज एक और प्यादे की बलि ले लेगा –? वह टीम की सबसे मजबूत खिलाड़ी है – उसके बिना टीम कमजोर हो जाएगी – आखिरी समय में तो किसी और को भी नहीं ले जाया जा सकता... ऐसे समय में अन्वेषा के पिता को उसे जाने से नहीं रोकना चाहिए – मैं कल सुबह उनसे बात करूंगा –'

रात बहुत लंबी थी, बहुत गहरी... सारांश देर तक करवटें बदलता रहा – उसकी नींद अन्वेषा के फोन की घंटी से ही खुली... सर, डैड ने अपनी टिकट कैंसिल करा ली है – मैं अकेली ही चल रही हूँ...

...रात का धुंधलका हल्का हो आया था... सारांश की अटकी सांसें जैसे तेजी से वापस लौट रही थीं... उसे एक कहावत याद हो आई... 'एवरी पॉन इज ए पोटैन्शियल क्वीन'. ..प्यादा और ताकतवर हो गया था... इतना ताकतवर कि 'क्वीन' में बदल जाए... उसने तय किया अब से वह 'क्वीन' को वजीर या मंत्री नहीं, रानी कहेगा... सिर्फ रानी –

.....

गुड़िया का ब्याह

इला प्रसाद

उस दिन अचानक ही हमें मालूम हुआ कि हमारी गुड़िया अब बड़ी हो गई है और हमें उसकी शादी कर देनी चाहिए। हमें समझ में भी नहीं आता अगर दीदी ने बतलाया न होता। गुड़िया दीदी ने ही बनाकर दी थी। लाल होंठ और काली पहुंचने वाली कपड़े की सफेद गुड़िया जिसे हम बड़े चाव से कभी साड़ी तो कभी फ्रॉक पहनाते। वह इतनी सुंदर थी कि किसी भी ड्रेस में अच्छी लगती। कभी हम उसके लंबे काले बालों की चोटियां बना देते, जब फ्रॉक पहनाते तो उन्हीं बालों का जूड़ा बन जाता साड़ी पर। लेकिन, उसकी शादी का खयाल कभी हमारे मन में नहीं आया। हम तो हर रोज की तरह स्कूल से लौटकर अपनी किताबों की अलमारी के निचले खाने में बैठी गुड़िया से बातें कर रहे थे। उस छोटे–से घर में और जगह थी भी नहीं। एक कोने में हमारी अलमारी, दूसरे में दीदी की। बाकी जो जगह बची वहां हमारे बिस्तर। दीदी बड़ी थीं, उन्हें बहुत पढ़ना होता था, इसलिए उनके लिए एक टेबल कुर्सी भी थी। हम तो यूं ही पढ़ लेते थे। ज्यादा पढ़ना भी नहीं था। सुबह सात बजे से दस बजे तक का स्कूल फिर घर आकर थोड़ा होमवर्क और बाकी समय गुड़िया का। उस दिन भी यही हुआ। हमने किताबें कोने में डालीं, खाना खाया और गुड़िया से बातें करने लगे।

दीदी अपनी कुर्सी पर बैठी परीक्षा की तैयारी में व्यस्त थीं कि अचानक उन्होंने सिर घुमाया और बोलीं 'सुधा, नीलू! मुझे लगता है तुम लोगों की गुड़िया अब बड़ी हो गई है। उसकी षादी कर तुम लोगों को उसे ससुराल भेज देना चाहिए।'

हम चकित! सब अच्छी बातें दीदी के ही दिमाग में कैसे आती हैं!

लेकिन, अब अगली समस्या उठ खड़ी हुई। हम गुड़िया का दूल्हा कहां खोजें? पूरे मुहल्ले में जिस–जिस को हम जानते थे सबके तो गुड़िया ही थी, या फिर गुड्डा–गुड़िया दोनों ही थे। अकेला गुड्डा तो किसी का भी नहीं था। कौन हमारी गुड़िया से ब्याह रचाए?

हम पूरा मुहल्ला अगले दो दिनों में घूम आए। कहीं हमारी सुंदर गुड़िया का दूल्हा नहीं था। क्या समझती हो, लड़की की शादी आसान होती है? कुक्कू ने सयानेपन से कहा 'मैं जानती हूं, रोज तो मेरी मां मेरे पापा से यही कहती हैं। मेरी दीदी की शादी होनी है न। बहुत ढूंढ़ना पडता है।'

हम थक–हारकर रुआंसे हो गए।

नहीं करना गुड़िया का ब्याह!

फिर दीदी ने ही हमारी परेशानी समझी। उन्होंने एक गुड्डा बना दिया। हम वह गुड्डा शीलू के घर दे आए। उनका गुड्डा, हमारी गुड़िया ! विवाह की तैयारियां होने लगीं।

दिन तो रविवार ही रखना था। सब की छुट्टी होती है। शादियां रात में होती हैं इसलिए और कोई झंझट नहीं। सब आ सकते थे और सब ने आना स्वीकार भी कर लिया। हम सारे दोस्तों को निमंत्रण दे आए। मां ने छोले–पूरियां और गुलाब जामुन बनाने की स्वीकृति दे दी। जिन्हें आना था वे सब बाराती ही थे। कुल दस–बारह बाराती। नीलू, पंडित। गुड्डे की मम्मी शीलू। गुड़िया की मम्मी मैं। मुन्ना गुड्डे का पिता बनने को तैयार हुआ। सबकुछ निर्विघ्न संपन्न हो जाता लेकिन शादियां क्या इतनी आसानी से हो जाती हैं! कन्यादान के समय समस्या खड़ी हो गई जब पंडित ने पूछा, 'गुड़िया के पापा कौन?'

मुन्ना हमारी तरफ आ गया। 'मैं गुड़िया का पिता हूं। गुड्डे के पिता नहीं हैं।'

पंडितजी मान गए।

शादी हो गई।

ऐसी परंपरा है कि लड़की ससुराल जाए तो उसके घरवाले रोते हैं और लड़की भी। इसलिए हम भी रोए। अपनी तरफ से भी और गुड़िया की तरफ से भी। बहुत रो–धोकर हमने गुड़िया को ससुराल भेज दिया।

'बेटियां तो ससुराल जाने के लिए ही होती हैं,'– बड़ों ने कहा।

हमारे लिए घर सूना हो गया।

अगले दिन जब हम स्कूल से आए तो हमारे पास करने के लिए कुछ नहीं था।

गुड़िया ससुराल में थी। उसके गहने, कपड़े, खिलौने, बिस्तर सब हमने दहेज में दे डाले थे। अलमारी के निचले खाने में जगह ही जगह थी। हम चाहते तो कुछ किताबें वहां भी जमा स्कते थे। लेकिन ऐसा करने का मेरा बिल्कुल ही मन नहीं हुआ। नीलू को भी ऐसा ही लगा।

हम दोनों उदास हो गए।

अगले दिन से गर्मी की छुट्टियां शुरू हो गईं। अब दोपहर भर करें क्या? दीदी को तो पढ़ना ही पढ़ना है। हमें कहेंगी, 'सो जाओ।' दिन में कहीं नींद आती है! कितना खाली–खाली लग रहा है। किससे बात करें। किसे नहलाएं, खिलाएं, सुलाएं। लोरी सुनाएं!

हमें अचानक से रोना आने लगा।

'हम शाम को गुड़िया को देखने जाएंगे। शीलू के घर।' मैंने नीलू से कहा।
वह झट सहमत।

लेकिन इस तरह अगले ही दिन लड़की के मां–बाप का उसकी ससुराल पहुंच जाना कुछ ठीक नहीं लगा। हमने अपने बड़ों से इसकी निंदा ही सुनी थी। इसलिए हम दोनों को ही लगा कि हमें शीलू और मुन्ना के बुलावे का इंतजार करना चाहिए। जब गुड़िया का रिसेप्शन होगा तब हम जाएंगे।

पहाड़ जैसे गर्मी की छुट्टियों के दिन।

दिन भर गर्म हवा सांय–सांय करती। मैं और नीलू ढूंढ़–ढूंढ़ कर पुराने धर्मयुग निकालते और बाल जगत पढ़ते। चार किताबें ऊंची अलमारी से और गिरतीं और दीदी भईया डांट लगाते। दो दिन बीत गए। कोई खबर नहीं आई।

'सुधा नीलू! तुम लोग बाहर जाकर खेलतीं क्यों नहीं? शाम हो गई तब भी अंदर ही बैठे रहना है?' बड़ों ने पूछा।

'किसके साथ खेलें? शीलू मुन्ना आते ही नहीं।' हमने मायूसी से जवाब दिया।

'क्यों? मुहल्ले में एक उन्हीं के साथ खेलते थे तुम? कुक्कू भी तो है। रीता, संगीता, क्या हो गया है तुम्हें?' दीदी ने डांट लगाई।

अब हम क्या बताएं। हमारी गुड़िया उनके पास है। क्या ये जानते नहीं!

'चलो उस ओर घूम आते हैं। क्या पता शीलू मुन्ना कहीं खेल रहे हों। हम भी बाहर जाते हैं। उधर ही जाकर खेलेंगे।' नीलू ने कहा।

शीलू और मुन्ना सड़क पर ही मिल गए। बुढ़िया की दुकान से जाने क्या खरीद कर लौट रहे थे दोनों। हमने उन्हें रास्ते में ही जा पकड़ा।

'कहां जा रहे हो?'

'आलू ले जा रहे हैं। मां से आलू–पराठें बनवाएंगे।'

'हमारी गुड़िया कैसी है?'

'अच्छी है। मजे में है अपने गुड्डे के साथ।' मुन्ना बोला।

'लेकिन उसे हमारे पास भी आना चाहिए।'

'अभी कैसे आ सकती है! अभी तो बहू भात होना है।'

'कब करोगे बहू भात?' हमने बड़ी आशा से पूछा।

'बताएंगे न। रुको तो। जब करेंगे तो बुलाएंगे। तब आना।' मुन्ना सयानेपन से बोला। 'कब तक रुके रहें हम तुम्हारे बुलावे के लिए। कब से तो रुके हुए हैं हम। खेलने भी नहीं आते। बुलाते भी नहीं।'

'बुलाएंगे।' दोनों ने एक साथ कहा और चले गए।

हम वापस।

'लूडो खेलो।' भईया ने कहा।

रविवार को आधे घंटे का बाल सभा आता रेडियो पर। उसे सुन लेते। पूरा सप्ताह बीत

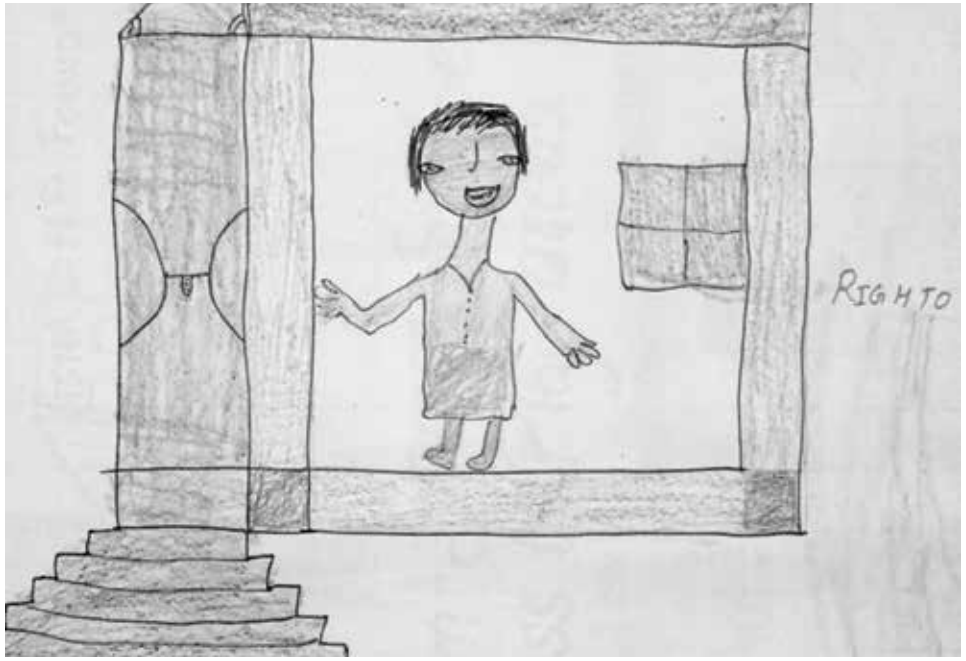

गया। हम खेलने जाते। कभी शीलू और मुन्ना की शक्ल नजर न आती मैदान में। घर लौटते, दीदी अपनी टेबल पर पढ़ती मिलतीं। हमें देखकर कभी प्यार से मुसकरा देतीं। फिर पढ़ने लगतीं। हमारे धैर्य की हद हो गई। यह क्या है? हमारी गुड़िया लेकर हमीं से ऐंठ? हमने आपस में सलाह की और किसी को कुछ बताए बिना एक दिन हम दोनों शीलू के घर जा पहुंचे। दरवाजा शीलू की मां ने खोला।

'चाचीजी, शीलू कहां है?' मैंने सादगी से पूछा।

'आओ, आओ, घर पर ही है। अंदर जाओ।' चाचीजी ने रास्ता दिखा दिया।

हम दोनों शीलू और मुन्ना के कमरे में।

हमारी ही तरह उन्होंने भी अपनी किताबों की अलमारी के निचले खाने में गुड़िया का घर बनाया हुआ था। उतने ही आराम से, सुखपूर्वक, हमारी गुड़िया वहां गुड्डे के साथ बैठी थी जैसी वह हमारे यहां होती।
'देख लिया न, हम भी अच्छे से रखते हैं गुड़िया को।' शीलू बोली।

'उससे क्या! इतने दिन हो गए। तुम लोग आते ही नहीं। बहू भात भी नहीं करते। इसलिए तो हमें उसे लिवाने आना पडा।' नीलू तुनक कर बोली।

'ऐसे कोई ले जाता है क्या? ऐसे लड़की नहीं जाती है शादी के बाद।' शीलू की मां जो पीछे से हमारा वार्तालाप सुन रही थीं, हंसकर बोलीं।

'लेकिन ये लोग कुछ करते ही नहीं।' मैं रुआंसी हो आई।

लेकिन वे तब तक अपनी बात कहकर जा चुकी थीं। बच्चों की बातों में कौन पड़े!
'हम तो आज इन्हें ले जाएँगे।' मैं और नीलू जिद पर उतर आए।

'हम नहीं देंगे। अरे वाह! शादी की है तो गुड़िया गुड्डे के घर में रहेगी या तुम्हारे घर में? पहले सोचना था। हम कहने आए थे कि हमारे घर में शादी करो?'

'उससे क्या। हमने थोड़े दिन के लिए दिया था। हमेशा के लिए थोड़े ही। गुड़िया हमारी है। गुड्डा भी। हम दोनों को ले जाएंगे।'

'कोई शादीशुदा लड़की को वापस ले जाता है क्या?'

'हम ले जाएंगे।'

'गुड्डे को अकेला छोड़कर?'

'उसे भी ले जाएंगे।'

'घर जमाई बनाओगे?'

'बनाएंगे।'
अच्छी–खासी बहस और लड़ाई के बाद गुड्डा और गुड़िया, दोनों को हथियाकर उन्हें बगल में दबाये हुए, सांझ ढले, हम दोनों विजयी भाव से घर में दाखिल हुए।

'जरा देखो इन्हें। फिर से वापस ले आईं अपनी मरियल–सी गुड़िया और गुड्डा। मंझली दीदी ने मुंह बिचकाया।

'यह क्या है?' दीदी और भईया चौंके।

फिर हम कुछ समझ पाते इससे पहले ही भइया ने आगे बढ़कर गुड्डा और गुड़िया दोनों ही थाम लिए और हंसते हुए उन्हें बालकनी से हाथ बढ़ाकर नीचे नाले में फेंक दिया।

फिर कभी हमने गुड़िया का खेल नहीं खेला...।

.....

फास्ट बॉलर

गीत चतुर्वेदी

दफ्तर के बाहर उन लड़कों को क्रिकेट खेलते देख मन लहक गया। रविवार का दिन था और पूरी सड़क खाली थी। आठ–दस लड़के थे और हर रविवार को यहां खेलते। मैं पिलर के पास खड़ा सिगरेट पीता उन्हें देखता रहता। हर बार सोचता कि जाकर पूछूं, मैं भी खेलूं क्या ? पर कभी नहीं हो पाया। एक बॉल ढुलकती हुई मेरे पास आई, उन्होंने अंकल–अंकल कहकर बॉल के लिए आवाज लगाई और मैं उनके साथ चला गया। फील्डिंग के लिए खड़ा होने पर मुझे बहुत शर्म आ रही थी। आफिस वाले देख रहे होंगे।

जब मेरी बैटिंग की बारी आई, तो एक लड़का चिल्लाया, 'अंकल को स्लो फेंकना। 'मैं मुस्करा दिया। इनकी तो आईला .....बॉलीच गुम कर दूंगा। बॉल बीच में टप्पा खाई और कमर तक आई। बहुत नजाकत के साथ मैंने उसे टिक किया। बैट की मीठी आवाज गूंजी और मेरे पूरे हाथ में झनझनाहट फैल गई। अगली गेंद मैंने उसके सिर से उछाल दी। उसकी तीसरी गेंद बहुत तेज आई ऑफ में निकल गई और चौथी गेंद सीधे मेरे दाहिने हाथ पर कलाई के चार इंच ऊपर आ लगी। दर्द से आंखो में पानी आ गया और सामने सब कुछ धुंधला पड़ गया। बैट फेंककर किनारे हो गया। बॉल ठीक उसी जगह लगी थी, जहां एक साल पहले हाथ का ऑपरेशन हुआ था। ठीक टांको के ऊपर। पूरे हाथ में झनझनाहट। कान में सांय–सांय। हाथ लाल हो गया था, सूजन बढ़ रही थी। मैं वापस अंदर आ गया। क्रीम मंगाकर मलने लगा।

मुझे लगा, मैंने बरसों बाद बैट उठाया है, पर ऐसा नहीं था। छह साल पहले मैंने आखिरी बार क्रिकेट खेला था। क्रिकेट के साथ मेरी बेशुमार स्मृतियां जुड़ी हैं, लेकिन कुछ ऐसी हैं, जो अक्सर लौट आती हैं। जब भी किसी बॉलर को विकेट लेने पर खुषी जाहिर करते देखता हूं, तो मुझे अपना खुश हो जाना याद आ जाता है। मैं मुख्यतः बॉलर था और जिस तरह पहली हैट्रिक ली थी, वह अब भी याद आती है। क्रिकेट से जुड़ी ये सारी स्मृतियां किसी प्रतीक की तरह हैं, जो जीवन की अगली बातों का एक कूट हैं, जिन्हें तोड़ने का कोई तरीका अभी तक नहीं आया। उस समय मेरी

इनस्विंगर सटाक से निकलती थी, जांघ को छूती हुई और डांडी उड़ा जाती थी। अब मैं कुर्सी पर बैठा काम करता हूं और पता नहीं, कहां से, कोई अदृश्य इनस्विंगर आती है और बैठे–बैठे मुझे आउट कर जाती है।

अपने ग्रुप में छोटा–मोटा मैच तो पहले भी खेला करता था, लेकिन वह पहला मौका था, जब बड़ों के बीच खेला। जब मैं सातवीं में पढ़ता था। मैदान में दो टीमें थीं और दूसरी टीम में एक खिलाड़ी कम था। बेदी का भाई होने के कारण मुझे जगह मिल गई। बेदी राइवल टीम में था। मैं उससे बहुत डरता था, उसकी बॉलिंग से भी। छोटी–सी बात पर भी बीच मैदान कनटाप बजा देना उसकी आदत थी। मैं रूआंसा भगवंती नवाणी स्टेज पर बैठ जाता और कबूतरों की सूख गई शिट गिना करता।

पंद्रह ओवरों का मैच था। मुझे आठवें नंबर पर भेजा गया। छह–सात गेदें बची होंगी तब। मैं सबसे छोटा था। बे बड़े, ऊंचे और खूंखार दिखते लड़के थे। उनमें से कई ऐसे थे, जिन्हें बुरा बच्चा माना जाता था और उनके साथ देख लेने पर घर में सजा मिल जाने का खतरा होता।

मुझे याद है, मैं क्रीज पर खड़ा हुआ, तो हमारी टीम के दो लड़कों ने मेरी पोजीशन ठीक की। एक मेरे पीछे खड़ा हो गया, बार–बार समझाते हुए कि सिर्फ टच करना है, एक रन लेना है और दौड़ना नहीं है, क्योंकि वह मेरा रनर है, वह दौड़ेगा। उसने गेंद फेंकी, मैंने बैट धीरे से हिलाया। टच ही तो करना था। वह फुलटॉस थी। जब वह दौड़ रहा था, तो उसे बहुत ध्यान से देखा था। उसके हाथ से छूटते समय भी बॉल दिखी थी। बीच में कब गायब हो गई और कब सारे लड़के शोर करने लगे, मेरी समझ में नहीं आया। पलटकर देखा, तीनों डंडे जगह छोड़ चुके थे। मैं अवाक्, रोने के लिए किनारे खड़ा था ।

मेरे रनर ने मुझे बैट लेते हुए कहा, 'क्यों रे, तू बेदी का भाई है .....और फुलटॉस पे बोल्ड ?'

मनीष नाम का बॉलर जिसके बाल जॉन बॉन जॉवी की की तरह थे और जो जेसन डोनोवन के गाने, खासकर 'अनदर नाइट', दिल से गाता था, उसने मेरे सिर पर हाथ

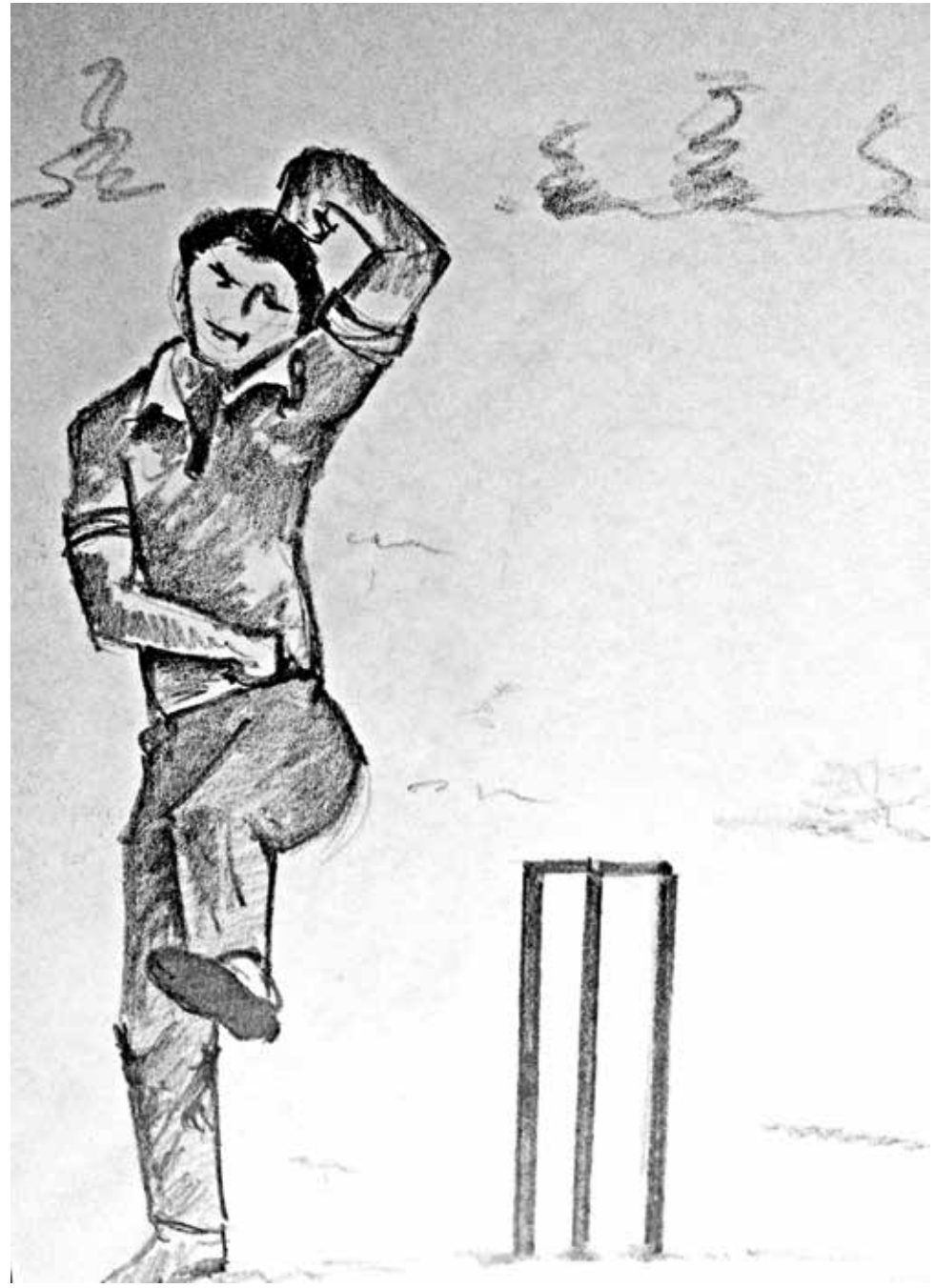

फिराया। मैं रोना रोकता पेड़ के नीचे जा बैठा।

इनिंग्स बदलने पर मैं उनसे बार–बार बॉलिंग के लिए कहता रहा, पर किसी ने नहीं दिया। मैं खाड़ाभर्ती था यानी उन्होंने सिर्फ ग्यारह का नंबर पूरा करने के लिए मुझे रखा था।

बेदी और उसके दोस्त धमाधम कूट रहे थे। मैं हर ओवर के बाद उनसे बॉल मांगता और वे झिड़क देते। बहुत देर बाद अचानक उन्होंने खुद बॉल पकड़ा दी, 'चल, लास्ट ओवर है, वो लोग ऑलमोस्ट मैच जीत गए हैं, तू कर ले बॉलिंग' वाले अंदाज में। मुझे अब यह याद नहीं, कितने रन बने थे, क्या आंकड़े थे, पर वह इंप्रेशन याद है, गेंद फेंकते समय अपना उछलना और माइकल होल्डिंग वाली स्टाइल में फेंकने से ठीक पहले हाथ को एक खास तरीके से झटका देना याद है। बेदी नॉन–स्ट्राइक पर था, सामने कोई और, मैं बहुत लंबे रन–अप के साथ आया और पहली गेंद इनस्विंग, सीधे उसकी जांघ में जा घुसी। वह जिस तरह सहला रहा था, पता चल जाता कि बॉल रापचिक तेजी से घुसी होगी। दूसरी गेंद फिर इनस्विंग। और इस बार बीच में जांघ नहीं आई। गिल्ली उड़ गई। क्या चीखा था मैं ...किसी को भी उस बोल्ड होने पर यकीन नहीं हुआ। अगली बॉल डालने से पहले मैंने अज़हरूद्दीन के अंदाज में कॉलर खड़े कर लिए। अगली गेंद शायद मेरी स्मृति की सर्वश्रेष्ठ यॉर्कर थी, मुझे उस बैट्समैन का लड़खड़ाकर गिरना अब तक याद है। तीनों डंडे जमीन पर बिखर गए थे। मैं हमेशा चाहता रहा कि एक ऐसी गेंद डालूं, जिससे स्टंप दो टुकड़े हो जाए और गुलाटी खाता हुआ कीपर के पीछे जा गिरे। वह गेंद मेरी हथेली में रहती है, मुझे पता है, लेकिन इस जीवन में वह उंगलियों की कैद से बाहर नहीं निकली।

मैंने दो गेंद पर दो विकेट ले ली थी और सारे फील्डर हैट्रिक–हैट्रिक चिल्लाने लगे।

दर्शक बमुश्किल बीस–पचीस थे, जो अमूमन उदासीन रहते। मैदान से गुजरते वक्त कुछ देर खड़े होकर खेल देख लेते या कोई काम न होने पर वहीं बैठ जाते। वे कभी तालियां नहीं बजाते थे। कभी यह पता नहीं चलता था कि वे किस टीम की तरफ से मैच देख रहे हैं।

फिर भी मुझे महसूस हो रहा था कि पूरा स्टेडियम चिल्ला रहा है मेरे लिए। मैंने वापस अपने कॉलर नीचे कर लिए। अब मेरा हाथ कांप रहा था और हांफ बढ़ रही थी। मैंने एक और लंबा रन–अप लिया। जब दौड़ रहा था, तो खुद को लग रहा था कि मैं एक ट्रेन हूं, जिसके मुंह से आग निकल रही है। इस वक्त मुझे 'मुंबई एक्सप्रेस' का नाम दिया जाना चाहिए। अंपायर के पास मैं उछला, हवा में होल्डिंग की तरह हाथ लहराया और झटक दिया। बॉडीलाइन सीरिज में वह बॉलर पिच पर सिक्का रखकर उस पर गेंद डालने का अभ्यास करता था। मुझे पिच पर पड़ा सिक्का साफ दिख रहा था। उसके बाद मुझे बॉल नहीं दिखी, सिर्फ टनाक की आवाज आई और सारे लड़कों का शोर। इस बार ऑफ स्टंप उड़ा था और बिना टूटे दूर जाकर गिरा था। मैंने हैट्रिक ले ली थी ।

बड़े बच्चों के बीच यह मेरा पहला मैच था और मैंने उन्हें बता दिया था कि अगर मुझे लास्ट की जगह पहला ओवर दिया जाता, तो अब तक मैं यह मैच खत्म कर चुका होता।

सारे लड़के दौड़ते हुए मेरी तरफ आए। ऐसा पहले मैंने टीवी पर ही देखा था। उन्होंने मेरे हाथ पर ताली मारी। मेरे बालों में उंगलियां फिराई और उनमें से एक बोला, 'सच्ची रे, तू तो बेदी का भाई निकला।'

मैंने बेदी को देखा, वह नॉन–स्ट्राइक पर सिर झुकाए अपने बैट का मुआयना कर रहा था।

मैंने एक से पूछा, 'हम मैच जीत गए ?''

उसने कहा, 'नहीं, दो बॉल पर चार रन चाहिए। सुन, तू ठंडा रहना, विकेट नहीं मिले, परवाह नहीं। पर रन मत देना।

मैंने कहा, 'देखो, अगली भी डांडी उड़ाता हूं, मैंने कॉलर फिर चढ़ा लिए।

लंबे रनअप और वैसी ही रफ्तार के साथ बॉल फेंकी। बैट्समैन का बैट किनारे से छू

गया। बॉल स्लिप के पीछे गई। एक रन लिया जा चुका था।

सामने बेदी आ गया। मैं बेदी को कभी बोल्ड़ नहीं कर पाया था। वह मेरा क्रिकेट का गुरू था, म्यूजिक, फिल्मों और किताबों का मैं जहां कहीं जाता, वहां मैं बेदी का भाई होता। इनस्विंग मेरा सबसे घातक हथियार था ओर वह बेदी ने ही सिखाया था। मैं बेदी को भले बोल्ड न कर पाया, उसे रन तो नहीं लेने दूंगा। मेरी इनस्विंग को अमूमन वह बैकफुट पर जाकर स्लिप के पास से निकाल देता था। मैंने स्लिप पर दो–तीन एक्स्ट्रा लगा दिए। मैं इनस्विंग नहीं फेंकने वाला था। मुझे नहीं पता था, मैं क्या फेंकूंगा। मेरे हाथ से बॉल छूटी और वह कूदता हुआ आगे आ गया, फुलटॉस पर लिया और टनाक। मेरी जान सूख गई। गेंद बिल्कुल मेरे पास से निकली, धूल उड़ाती हुई। पीछे भगवंत नवाणी स्टेज के पास हम चौका मानते थे, बॉल उससे भी पीछे तक गई, झाड़ियों में।

मैं वहीं पिच पर उकड़ूं बैठ गया बेदी की टीम जश्न मनाने लगी। वे उछल–उछलकर चीख रहे थे। गले लग रहे थे। बैट लड़ा रहे थे। अपनी टोपियां उड़ा रहे थे और मैच जीतने के बाद मिले पैसों का हिसाब कर रहे थे। हमारी टीम का कैप्टन उन्हें पैसे दे रहा था और बहुत नाराजगी में मेरी ओर देख रहा था। हमारी टीम तितर–बितर हो गई थी। सब वापस जा रहे थे। चारों ओर उनके दौड़ने, चलने और उछलने से उड़ी धूल घिर गई थी। मैं वहीं पिच पर था। अपने पास से बॉल से उड़ी धूल को बॉल के आकार में ही महसूस कर रहा था।

थोड़ी देर बाद उठा, कॉलर सीधा किया और पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया ।

मैदान के उस तरफ दोनों टीमों के लड़के जमा हो गए। वे सब दोस्त थे। मैच से जीते पैसों से उन्होंने वड़ा पाव खाया और एक–एक बोतल नींबू–सोड़ा पिया। मैं पेड़ के नीचे से उन्हें देखता रहा। फिर धीरे–धीरे मैं रोने लगा। नाक के बीच धूल का स्वाद सूंघता। आंखों के पास गिरे आंसू को पोंछता, तो शायद गीली धूल से स्टंप जैसा कोई निशान बनता। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं मैच को जीता हुआ मानूं या हारा हुआ। मैंने अपने जीवन की पहली हैट्रिक ली थी और बॉलर के रूप में कैरियर की शुरुआत की थी। थोड़ी देर पहले ही सबने खुशी मनाई थी और अब

किसी को मेरा ख्याल नहीं था।

एक विजेता, पराजितों की तरफ अकेला बैठा हुआ था। सभी की नजरों से दूर।

यह पूरी स्थिति किस बात का प्रतीक है?

दूर तक दिखता है कि यह स्थिति घूम–घूम कर मेरे पूरे जीवन में किसी न किसी तरह आती रही है।

कई बरसों बाद दादर स्टेशन की एक बेंच पर रात के पौने एक बजे लोकल ट्रेन का इंतजार करते समय बेदी ने बताया, 'किसी को भी यकीन नही था कि बारह साल का लड़का इतनी फास्ट बॉलिंग कर सकता है । वह मेरी देखी सबसे सैक्सी हैट्रिक थी।' फिर उसने मेरे कंधे पर हाथ मारते हुए कहा, 'पर मुझे पता था कि अगर बॉल तेरे हाथ में गई, तो हम मैच नहीं जीत पाएंगे, इसलिए जब उन्होंने पूछा था कि बेदी, तेरा भाई बॉलिंग कैसी करता है, तो मैं सिर्फ हंसा था और बोला था, मैच जीतना है, तो उसको दे दे बॉल। उन्होंने मेरी बात को हास्य–व्यंग्य समझ लिया। पर मुझे विश्वास था। मैं तुझसे बहुत प्यार करता हूं।'

मैं सिर झुकाकर सुन रहा था। मुझे बहुत खुशी हो रही थी। सीने से कुडबुड़–सी कोई अनजानी आवाज आ रही थी। मैंने उससे कहा, 'अगर तूने यही बात उस शाम कह दी होती, तो मैं उस पेड़ के नीचे बैठ घंटों रोया न होता।'

वह ट्रैक पार कर मुझे तीन नंबर प्लेटफॉर्म पर ले गया और मेरे लाख मना करने के बावजूद उसने एक वड़ा पाव और लेमन सोडा खरीदा। जब मैं सोडा पी रहा था, वह इस तरह मुझे देख रहा था, जैसे मेरी किसी गेंद के टप्पा खाने के बाद स्विंग होने का इंतजार कर रहा हो।

उसके बाद मैंने चार बार और हैट्रिक ली। अलग–अलग समय पर। उनमें से एक कॉलेज के ग्राउंड में ली थी, जिसके कारण मैं अपनी क्लास की लड़कियों में पॉपुलर हो गया। कॉलेज में कोई बेदी नहीं था, वहां कोई मुझे बेदी का भाई करके नहीं

जानता था। यहां जो कुछ था, मैं था। इंटरक्लास मैच होते थे, तब हमारी कॉलेज की टीम नहीं बनी थी।

मैंने अपने दोस्तों के साथ मिलकर कॉलेज में बहुत हल्ला मचाया कि हमारे कॉलेज की भी एक टीम हो। एक दिन उसका बनना तय हो गया। सब मानकर बैठे थे कि मैं उस टीम का कैप्टन होऊंगा, क्योंकि मेरा इनीशिएटिव सबसे ज्यादा था। बांद्रा में कोलगेट–पामोलिव के मैदान पर टेस्ट होना था, फिर टीम चुनी जानी थी। कॉलेज के प्रिसिंपल, फिजिक्स के हेड और स्पोर्ट्स के हेड की सेलेक्शन कमेटी थी। हर किसी को खाली स्टंप पर छह बॉल डालनी थी और बैट्समैन को छह बॉल फेस करनी थी। मैं बॉलर था, सो मेरा टर्न बाद में आना था। मैं स्ट्रेचिंग, वार्मअप करता रहा। बॉल की सिलाई को दो उंगलियों के बीच फंसाकर प्रैक्टिस करता रहा। मैंने अपनी हथेली और उंगलियों से अपने सपनों की स्टंप–तोड़ गेंद का आवाह्न किया, जैसे हवन से पहले अग्नि का आवाह्न करते हैं।

मैं छह बॉल पर छह वैरायटी देना चाहता था।

मैंने कंधों से नीचे आते अपने केश रबर बैंड से बांधकर पोनी बनाई और लंबा रनअप नापा। मेरी पहली गेंद इनस्विंगर थी, ऑफ में टप्पा खाकर मिडिल स्टंप के अंगुल–भर ऊपर से निकल गई। चारों और तालियां गूंजने लगीं। दूसरी गेंद सीधी निकली और ऑफ स्टंप के सूत–भर पास से निकल गई। ये बॉलिंग की सर्वश्रेष्ठ कलात्मकता होती है, जब देखने में लगता है कि बॉल सीधा ऑफ या मिडिल पर जाएगी, तब वह थोड़ा बाहर की ओर लहराकर, ऐन ऑफ के बगल से निकल जाए। सबसे ज्यादा ऐसी गेदों पर स्लिप में कैच उड़ा करते हैं, वह गेंदा फेंकने के बाद मैंने कॉलर ऊपर कर लिया। गेंद पर मेरा हाथ सही था, यह विश्वास जानते हुए। अगली गेंद गुड लेंग्थ थी, जो टप्पा खाकर स्टंप में घुस गई और चौथी गेंद लेग स्टंप को धक्का मारते हुए कीपर के पास पहुंच गई। अगली दोनों गेंदें मैंने फिर उसी कलात्मकता से लहराकर ऑफ के बाहर निकाली।

ऐसी गेंदें कोई आसानी से नहीं डाल सकता। इसके लिए बरसों का रियाज चाहिए, हवा में ही गेंद को अप्रत्याशित लहरा देने का कौशल चाहिए और बॉल फेंकने से

ठीक पहले कलाइयों को एक खास झटका देने का हुनर चाहिए।

मेरी हर गेंद पर तालियां गूंजी थी, बार–बार खुल जाने वाले मेरे केश हर गेंद पर लहराए थे। हर गेंद के बाद मैं मुस्कराते हुए उस ओर देखता, जिस और सेलेक्ट. र्स और लड़कियां बैठी थीं। पार्ला, अंधेरी और खार की वे सारी मिनी–स्कर्ट टाइप लड़कियां दूर उपनगरों से आए इस फास्ट बॉलर के अपनी ओर देख लेने मात्र से उछल–उछलकर सीटियां बजा रही थी। मेरा सेलेक्शन तो पहले से तय था।

मैं अपना ओवर पूरा कर उन लड़कियों के पास जाकर बैठ गया और हर गेंद से जुड़ा अनुभव सुनाने लगा। थोड़ी देर बाद जब टीम की घोषणा हुई, तो उसमें मेरा नाम नहीं था। मैंने दुबारा पूछा, तिबारा पूछा, पर नहीं मैं कहीं नहीं था। मुझे यकीन नहीं हुआ। मैनें सेलेक्टर्स से सीधे पूछा, पर वे कंटेस्टेंट्स को जवाब देने के लिए बाध्य नहीं थे। मैं तमाशा नहीं करना चाहता था, पर मैं सदमें में था। ऐसी गेदें फेंकने के बाद भी सेलेक्शन न हो, यह अविश्वसनीय ही था।

मेरे दोस्तों, जिनमें ज्यादातर लड़कियां थी, ने हंगामा मचाना शुरू कर दिया। उन्होंने सेलक्टर्स को घेर लिया। नारे लगने लगे। उनके धोखेबाज, रिश्वतखोर और बेईमान होने की बातें उठने लगीं। मैं एक तरफ को सिर झुकाए खड़ा था और अभी भी अपने अचरज से जूझ रहा था। थोड़ी देर बार शोर थम गया। लोग जाने लगे। एक लड़की ने मेरे पास आकर बताया, 'वे कह रहे थे कि इसकी सिर्फ दो बॉल ही स्टंप पर लगी थीं, लाइन पर इसका कंट्रोल ही नहीं।'

मैं उस लड़की का चेहरा ही देखता रह गया। मुझे उस बयान पर एकबारगी भरोसा न हुआ।

थोड़ी देर बाद जब हम कैंटीन में गुजराती कचौड़ी और कटिंग चाय पी रहे थे, मुझें गहरा अहसास हुआ कि मैं अगले एक साल के लिए कॉलेज की टीम में नहीं हूं। उस वक्त मुझे रोना आ गया। मैं टेबल पर सिर झुकाकर सुबकने जैसा लगा। पार्ला, अंधेरी और खार की उन सारी मिनी स्कर्ट टाइप लड़कियों के सामने दूर उपनगरों से आया एक रिजेक्टेड फास्ट बॉलर सिर झुका कर रो रहा था।

उनमें से एक ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए मुझे चुप कराया। बोला, 'बॉलिग इज इन आर्ट। उसे खेलना आसान हैं, पर समझना मुश्किल।'

यह घटना भी मुझे एक प्रतीक की तरह लगती है।

इसके बाद मुझे जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे बहुत सारे लोग मिले, जिनके लिए किसी भी किस्म की बॉलिंग का मतलब बॉल का स्टंप से जाकर टकरारना–भर था।

मैं ऐसे लोगों को कभी संतुष्ट नहीं कर पाया।

.....

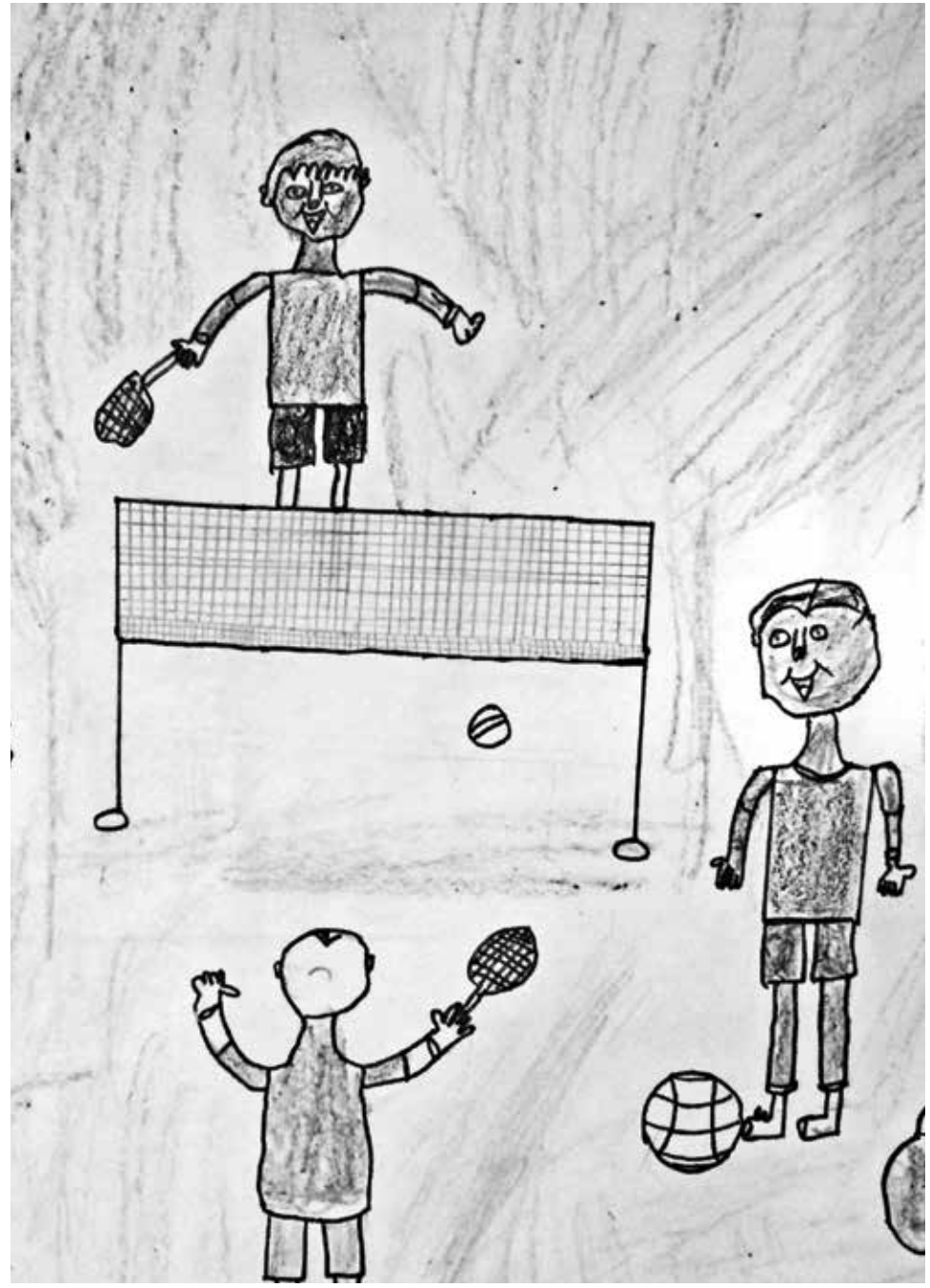

बटरफ्लाइज़ फुटपाथ पर रहने एवं कार्य करने वाले बच्चों के बीच कार्यरत एक समाज सेवी संस्था है। यह सन 1989 से इन बच्चों के बीच कार्य कर रही है। दिल्ली के अलावा बटरफ्लाइज अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के 5 द्वीपों के 85 गांवों में और उत्तराखंड में भी बच्चों के साथ काम करती है।

बच्चों की भागीदारी को बढ़ावा देना बटरफ्लाइज के कार्यक्रमों की पहली प्राथमिकता है, साथ ही इन कार्यक्रमों के जरिए बच्चों को सशक्त बनाना ताकि बच्चे जरूरी कौशल सीख सकें और एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित हो सकें।

बटरफ्लाइज़ बाल अधिकार के क्षेत्र में दिल्ली एवं केंद्र सरकार के साथ विभिन्न नीतियों और योजनाओं पर आधारित कार्यक्रमों में साथ मिलकर काम कर रही है व यह विभिन्न रचनात्मक तरीकों से बाल अधिकारों को बढ़ावा देने तथा उनके संरक्षण के लिए लगातार प्रयासरत है।

आभार

हम उन सभी लेखकों का आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अपनी कहानियों को इस किताब में संकलित करने की अनुमति दी। हम आभार व्यक्त करते हैं उन दोस्तों, सहयोगियों का जिन्होंने इन कहानियों को ढूंढने में मदद की। कृष्ण कुमार त्रिपाठी ने इन सभी कहानियों को पढ़कर अपनी राय दी उसके लिए हम उनका आभार प्रकट करते हैं।

बटरफ़्लाइज़ टीम
2014

यू–4, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली–110016
फोन : 91–11–2616395, 26191063
वेबसाइटः www.butterflieschildrights.org